श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित

षोड़शग्रन्थाः

(मूल पदच्छेद अन्वयार्थ एवं भावार्थ सहित)

पंडित श्रीमाधव शर्मा

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित

षोड़शग्रन्थाः

(मूल, पदच्छेद अन्वयार्थ एवं भावार्थ सहित)

अनुवादक-प्रकाशक

महामहोपदेशक, गीताज्ञानसूरि

पं० श्रीमाधव शर्मा

(सम्पादक 'श्रीकृष्ण' एवं श्री सुबोधिनी ग्रन्थमाला)

३५/१३ जंगमवाड़ी, काशी ।

द्वितीय संस्करण	दोलोत्सव	न्योछावर
१०००	सं० २००७	१॥)

श्रीकृष्ण कार्यालयका प्रकाशन

(१) षोड़शग्रन्थ-- मूल, पदच्छेद, हिन्दी अन्वयार्थ तथा भावार्थ सहित । श्रीमहाप्रभुविरचित षोड़शग्रन्थका यह अद्वितीय अनुवाद है। प्रत्येक वैष्णवको इसे पढ़ना चाहिये । न्यो १।।)

(२) षोड़शग्रन्थ--सरल हिन्दी भावार्थ सहित न्यो० ।।।)

(३) षोड़शग्रन्थ एवं विविध स्तोत्राणि--तृतीय संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है। न्यो० ।=) १०० प्रति एकसाथ मंगाने पर २५)

(४) वैष्णवसर्वस्व--श्रीवल्लभाख्यान, मूलपुरुष नित्यलीला इत्यादि वैष्णवोपयोगी संग्रह न्यो० ।।)

(५) सिद्धान्तरहस्य--संस्कृत कई टीकाओंके आधारसे हिन्दी भाषामें सविस्तर विवेचन तथा आत्मनिवेदनरहस्य सहित । ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेवाले प्रत्येक वैष्णवको इसका मनन करना उचित है।

(६) श्रीयमुनाजीके चालीस पद--यमुनाष्टक हिन्दी भाषान्तर भी इस ग्रन्थमें है। न्यो० ।)

(७) श्रीवल्लभकुलवचनामृत—चरित्र एवं उपदेश परम मननीय है। सचित्र पक्की जिल्द न्यौ० २)। थोड़ी प्रतियाँ रह गयी हैं।

(८) श्रीव्रजयात्रा वर्णन--श्रीमहाप्रभुजीकी तथा गोस्वामी श्रीव्रजरत्नलालजी महाराजकी यात्राका वर्णन तथा व्रजमाहात्म्य सहित सचित्र पक्की जिल्द न्यो० २)। थोड़ा प्रतियाँ रहगयी हैं।

(९) श्रीवल्लभाख्यान--सरल हिन्दी भावार्थ सहित न्यौ० ।।)

(१०) उत्सव—सचित्र त्रैमासिक 'उत्सव' के आठ अंक जिसमें श्रीकृष्ण जयन्तीसे प्रारम्भ कर प्रधान आठ उत्सवोंका सेवाक्रम, भावना एवं कीर्त्तनोंका परमोपयोगी संग्रह है। ग्रन्थाकारमें पक्की जिल्द न्यौ० १०)

सविनय निवेदन

अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमन्महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणने अपने आश्रित दैवीजीवों केसमुद्धारार्थ जो विविध लीलाएँ की हैं, उनमें ग्रन्थरचना भी एक है, आपश्रीने वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भागवतादि सच्छास्त्रोंका सार संक्षेपमें तथा स्पष्टरूपमें समझानेकी परम कृपा की है। आपश्रीने श्रीसुबोधिनीजी, अणुभाष्य, तत्त्वार्थदीप निबन्ध, पत्रावलम्बन, गायत्री भाष्यादि विविध ग्रन्थोंकी रचनाकर इन निज रचित ग्रन्थोंका सार तथा अपने सम्प्रदायके सम्पूर्ण रहस्यको समझानेके लिये षोडशग्रन्थोंकी रचना की है, इन ग्रन्थोंमेंसे कुछ ग्रन्थ स्तुति रूपमें है और कुछ ग्रन्थ उपदेश रूपमें है। इन उभय प्रकारके ग्रन्थोंका पाठ करनेसे भगवद्गुण गानके साथ निज कर्तव्यका यथार्थ बोध हो सकता है। जो वैष्णव श्रीमहाप्रभुजीके हृदयके भावको अपने हृदयमें पधराने तथा स्थिर करनेकी इच्छा करें, वे इन ग्रन्थोंको अपने हृदयस्थ कर कृतार्थ बनें। आचार्यश्रीके वचनामृत पान करनेसे नित्य एवं अनन्त आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है। आचार्यश्रीके इन प्रिय ग्रन्थोंको आपश्रीका स्वरूप ही समझना चाहिये। आप श्रीकी यह वाङ्मयी मूर्ति परमानन्दप्रदायिनी है। आपके नाम रूपके चिन्तन, दर्शनादिसे जिस प्रकार आनन्दका अनुभव होता है, उसी प्रकार इन ग्रन्थोंके पाठसे तथा श्रवणादिसे आनन्दानुभव होता है। हमारे मतानुसार यह षोडशाध्यायी श्रीवल्लभगीता है।

वैष्णवमात्र षोडशग्रन्थका नित्य नियमपूर्वक पाठ करते हैं। इन ग्रन्थोंके पाठके साथ इनके अर्थ जाननेकी इच्छा सभी वैष्णव रखते हैं। आचार्यश्रीके इन ग्रन्थोंका अर्थ जाननेकी इच्छा रखनेवाले वैष्णवोंकी अधिक सुविधाके लिये तथा पुष्टिमार्गीय पाठशालाओंके विद्यार्थियोंकी सुविधाके लिये मैंने यह ग्रन्थ मूलके साथ पदच्छेद

अन्वयार्थ एवं भावार्थ सहित प्रकाशित करनेकी व्यवस्था की है। आचार्यश्रीके परमोपकारक उपदेशामृतोंका श्रवण मननादि करना तथा अपने सहधर्मियोंमें इसका प्रचार करना आचार्यवंशज एवं आचार्यानुयायी मात्रका कर्तव्य है।

जिसप्रकार प्रथम संस्करणके प्रकाशित होते ही वैष्णवोंने इसका स्वागत कर मुझे प्रोत्साहित किया था उसी प्रकार इस द्वितीय संस्करणके लिए भी मुझे पूर्ण आशा है कि वैष्णवजनता इस ग्रन्थ रत्नको पधराकर मेरी सेवाको सार्थक करेंगे।

माधव शर्माका सादर भगवत्स्मरण

अनुक्रमणिका

१.	श्रीयमुनाष्टकम्	... १
२.	बालबोधः	.. १२
३.	सिद्धान्तमुक्तावली	.. २५
४.	पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः	.. ४१
५.	सिद्धान्तरहस्यम्	.. ६०
६.	नवरत्नम्	... ६६
७.	अन्तःकरणप्रबोधः	... ७२
८.	विवेकधैर्याश्रयनिरूपणम्	.. ७६
९.	श्रीकृष्णाश्रयः	.. ९०
१०.	चतुःश्लोकी	... ९७
११.	भक्तिवर्धिनी	.. १००
१२.	जलभेदः	१९७
१३.	पञ्चपद्यानि	१२०
१४.	संन्यासनिर्णयः	.. १३२
१५.	निरोधलक्षणम्	.... १३८
१६.	सेवाफलम्	.. १५३

❀ श्रीकृष्णाय नमः ❀

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित

षोडशग्रन्थाः

१—श्रीयमुनाष्टकम्

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम् ।
तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ॥१॥

पदच्छेदः —नमामि, यमुनाम्, अहम्, सकलसिद्धि-हेतुम्, मुदा, मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटाम्, तटस्थ-नवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना, सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः श्रियम्, बिभ्रतीम् ॥१॥

अन्वयार्थः—

सकलसिद्धिहेतुम्— समस्त सिद्धियोंमें कारणरूप।

मुरारिपदपंकजस्फुरदमंद-रेणूत्कटाम्—मुरारिके चरण कमलकी तेजस्वी तथा अधिक रेणु वाली,

तटस्थनवकाननप्रकटमोद-पुष्पाम्बुना—तटस्थित नवीन वनोंके विकसित पुष्प मिश्रित सुगन्धित जल द्वारा।

सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः—सुर और असुरों द्वारा सम्यक् पूजित स्मर पिता अर्थात् प्रद्युम्नजीके पिता श्रीकृष्णकी,

श्रियम्—शोभाका।

बिभ्रतीम्—धारण करनेवाली

यमुनाम्—श्रीयमुनाजीको।

अहम्—मैं (श्रीवल्लभाचार्य)

मुदा—हर्षपूर्वक,

नमामि—नमन करता हूँ।

भावार्थः—समस्त अलौकिक सिद्धियोंको देनेवाली, मुर-दैत्यके शत्रु भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण कमलकी तेजस्वी और अधिक अर्थात् जलसे विशेष रेणुको धारण करनेवाली, अपने तटपर स्थित नवीन वनके विकसित सुगन्धित पुष्प मिश्रित जल द्वारा, सुर अर्थात् दैन्यभाववाले व्रजभक्तोंके द्वारा और असुर अर्थात् मानभाव वाले व्रजभक्तोंके द्वारा अच्छी प्रकारसे पूजित, श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभाको धारण करने वाली श्रीयमुना महाराणीजीको मैं (श्रीवल्लभाचार्य) सहर्ष नमस्कार करता हूँ॥ १॥

कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला
विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता।
सघोषगतिदन्तुरा समधिरूढदोलोत्तमा

मुकुन्दरतिवर्द्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ॥२॥

पदच्छेदः—कलिन्दगिरिमस्तके, पतदमन्दपूरोज्ज्वला, विलासगमनोल्लसत् , प्रकटगण्डशैलोन्नता, सघोषगति-दन्तुरा, समधिरूढ़दोलोत्तमा, मुकुन्दरतिवर्द्धिनी, जयति-पद्मबन्धोः, सुता ॥ २॥

कलिन्दगिरिमस्तके—कलिन्द पर्वतके मस्तकपर

पतदमन्दपूरोज्ज्वला— पड़ने वाले अत्यन्त वेगके कारण उज्ज्वल दीखनेवाली

विलासगमनोल्लसत्प्रकट-गण्डशैलोन्नता— विलास पूर्वक चलनेके कारण सुशोभित और पर्वतके गण्डस्थल रूपसे ऊंची नीची दीखती हुई,

सघोषगतिदन्तुरा— शब्दपूर्वक गतिके कारण विविधविकार युक्त,

समधिरूढ़दोलोत्तमा—उत्तम झूलेमें भलीभांति विराजितके सदृश

मुकुन्दरतिवर्द्धिनी— श्रीमुकुन्द भगवानमें प्रेम बढ़ानेवाली

पद्मबन्धोः—कमलके बन्धु (श्री सूर्य) की,

सुता—पुत्री—श्रीयमुनाजी,

जयति—उत्कर्षताको प्राप्त हो रही हैं।

भावार्थः—सूर्यमंडलमें स्थित प्रभुके हृदयसे रस रूप प्रकट होकर फिर कलिन्द पर्वतके शिखरपर गिरते हुए अत्यन्त प्रवाहोंसे उज्ज्वल, विलास सहित चलनेसे सुन्दर और उत्तम शिलाओंसे उन्नत तथा ध्वनि सहित गमनसे ऊंची नीची होती अर्थात् उत्तम झूलेमें विराजित हुई सी दीखती एवं श्रीकृष्णचन्द्रमें प्रीति बढ़ाने वाली श्रीसूर्यपुत्री श्रीयमुना महाराणीजी श्रेष्ठतासे विराजमान हैं ॥ २॥

भुवं भुवनपावनीमधिगतामनेकस्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।
तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुका-
नितम्बतटसुंदरीं नमत कृष्णतुर्यप्रियाम् ॥३॥

पदच्छेदः—भुवम्, भुवनपावनीम्, अधिगताम्, अनेकस्वनैः, प्रयाभिः, इव, सेविताम्, शुकमयूरहंसादिभिः, तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका, नितम्बतटसुन्दरीम्, नमत, कृष्णतुर्यप्रियाम्॥३॥

भुवनपावनीम्— भूमण्डलको पवित्र करनेवाली—श्रीयमुनाजी

भुवमधिगताम्—पृथ्वीपर पधारने पर ।

शुकमयूरहंसादिभिः—शुक मोर और हंसादि पक्षियों द्वारा ।

प्रियाभिः—सखिजनोंके द्वारा

इव—जैसे हों वैसे,

अनेकस्वनैः—विविध शब्दोंसे

सेविताम्—सुसेवित (और)

तरंगभुजकंकणप्रकटमुक्तिकावालुका—तरंग रूपी श्रीहस्तमें पहने हुए कंकणों पर जड़े मोतीरूपी बालुका युक्त ।

नितम्बतटसुन्दरीम्—नितम्ब रूप तटयुक्त सुन्दरी (ऐसी)

कृष्णतुर्यप्रियाम्—श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटराणी (श्रीयमुनाजी) को

नमत—हेभक्तगण ! नमन करो ।

भावार्थः—सम्पूर्ण लोगोंको पवित्र करनेवाली भूमण्डलमें पधारनेपर जैसे प्रियसखियों द्वारा सेवन होती हो वैसे ही अनेक शब्द बोलते हुए तोता, मोर और हंसादि मधुर शब्द बोलनेवाले पक्षियोंके द्वारा सुसेवित हुई और तरंगरूपी भुजा-

ओंके कंकणोंमें स्पष्ट दीखनेवाली मोतियोंके समान चमकने वाली वालुका युक्त एवं नितम्ब भाग रूप उभय तटोंसे सुन्दर लगने वाली श्रीकृष्णकी चतुर्थ प्रिया (श्रीयमुनाजी) को हे भक्तगण ! तुम नमन करो ॥ ३ ॥

अनन्तगुणभूषिते शिवविरञ्चिदेवस्तुते
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।
विशुद्धमथुरातटे सकलगोपगोपीवृते
कृपाजलधिसंश्रिते मम मनः सुखं भावय ॥४॥

पदच्छेद :—अनन्तगुणभूषिते, शिवविरञ्चिदेवस्तुते, घनाघननिभे, सदा, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विशुद्धमथुरातटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलधिसंश्रिते, मम, मनः, सुखम्, भावय ॥ ४ ॥

अनन्तगुणभूषिते — अनन्त गुणोंसे सुशोभित ।

शिवविरञ्चिदेवस्तुते—शिव ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा स्तुतिकी हुई ।

घनाघननिभे — गम्भीर मेघोंके समान कान्तिवाली ।

सदा—सर्वदा,

ध्रुवपराशराभीष्टदे — ध्रुव और पराशर आदि को परम इष्ट फल देनेवाली ।

विशुद्धमथुरातटे—विशुद्ध मथुरा जिनके तट पर है ऐसी,

सकलगोपगोपीवृते—सम्पूर्ण गोप और गोपीजनादि द्वारा घिरी हुई,

कृपाजलधिसंश्रिते — कृपा सागर श्रीकृष्णके आश्रयमें रहनेवाली श्रीयमुनाजी,

मम, मनः—मेरे मनको ।

सुखं, भावय — सुख प्रकट करें

भावार्थः—अनन्त गुणोंसे सुशोभित, शिव ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तवित, निरन्तर गम्भीरमेघके समूहके समान देदीप्यवती, ध्रुव और पराशरको मनोवाञ्छित फल दान करने वाली अत्यन्त शुद्ध मथुरा नगरी जिसके तटपर बसी हुई है, तथा सम्पूर्ण गोप गोपीजनोंसे आवृत, कृपासागर श्रीव्रजाधीश्वरके आश्रयमें रहनेवाली हे श्रीयमुनाजी ! हमारे मनको सुख (आनन्दानुभव) कराइये ॥ ४ ॥

यया चरणपङ्कजा मुररिपोः प्रियम्भावुका
समागमनतोऽभवत् सकलसिद्धिदा सेवताम् ।
तया सदृशतामियात् कमलजासपत्नीव यत्
हरिप्रियकलिंदया मनसि मे सदा स्थीयताम्॥५॥

पदच्छेदः—**यया, चरणपङ्कजा, मुररिपोः, प्रियम्भावुका, समागमनतः, अभवत्, सकलसिद्धिदा, सेवताम् तया, सदृशताम्, इयात्, कमलजा, सपत्नी, इव, यत्, हरिप्रियकलिन्दया, मनसि, सदा, स्थीयताम् ॥ ५ ॥**

यया, समागमनतः—जिनके सम्मिलनसे
चरणपङ्कजा—श्रीगङ्गा जी
मुररिपोः—भगवान् श्रीकृष्णको
प्रियम्भावुका—प्रीतिकर
अभवत्—हुईं, तथा
सेवताम्—सेवा करनेवालोंको
सकलसिद्धिदा—सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाली
अभवत्—हुईं ।
तया—उन (श्री यमुनाजी) की
सदृशताम्—तुल्यताको (कौन)
इयात्—प्राप्त हो सकता है ?

यदि इयात्तर्हि—जो बराबरी करे भी तो
कमलजा—श्री लक्ष्मीजी
सपत्नी, इव—सौतिनके सदृश
इयात्—प्राप्त हों
हरिप्रियकलिन्दया—श्रीहरिके प्रिय (भक्तों) के कष्टको दूर करनेवाली श्रीयमुनाजी
मे, मनसि—मेरे मनमें
सदा—सर्वदा
स्थीयताम्—वास करो (मूलमें इव शब्द गौणताका वाचक है)

भावार्थः—जिन श्रीयमुनाजीके समागमसे, भगवच्चरणसे प्रकट हुई श्रीगङ्गाजी भी भगवानको प्रिय हुईं, उन श्रीयमुनाजीकी समानता भला कौन प्राप्त कर सकता हैं ? हां ! यदि कुछ समानता कर सकती है, तो वह कुछ न्यूनताके साथ श्रीलक्ष्मीजी ही, ऐसी सर्वोपरि तथा भगवद्भक्तोंके क्लेशोंको नाश करनेवाली श्रीयमुनाजी मेरे मनमें निरन्तर वास करें ॥ ५ ॥

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः ।
यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः॥६।

पदच्छेदः—नमः, अस्तु यमुने सदा तव चरित्रम् अत्यद्भुतम्, न, जातु, यमयातना, भवति, ते, पयःपानतः, यमः, अपि, भगिनीसुतान्, कथाम्, उ, हन्ति. दुष्टान्अपि. प्रिय,: भवति, सेवनात्. तव, हरेः, यथा, गोपीकाः ॥६॥

यमुने !—हेश्रीयमुनाजी (आपको)
सदा नमः अस्तु—सदैव नमन हो।
तव चरित्रम्—आपका चरित्र
अत्यद्भुतम्—अत्यन्त अद्भुत है।

ते, पयः पानतः——आपके जल पानसे

जातु——कभी भी ।

यमयातना——यमराज सम्बन्धी दुःख ।

न, भवति——नहीं होता है ।

यमः, अपि——यमराज भी ।

दुष्टान्, अपि——दुष्ट ऐसे भी ।

भगिनीसुतान्—बहिनके पुत्रोंके ।

उ कथम्——अरे किस प्रकार !

हन्ति——मार सकता है ?

यथा——जिस प्रकार

गोपिकाः——श्रीगोपीजन

तव, सेवनात्——आपके सेवनसे

हरेः प्रियाः——श्रीकृष्णको प्रिय

अभवन्—हुई

तथा—उसी प्रकार

तव—आपके सेवनसे भक्त

हरेः — प्रियः श्रीकृष्णको प्रिय

भवति—होता है ।

भावार्थः—हे श्रीयमुनाजी ! आपको निरन्तर नमस्कार हो । आपका चरित्र अतिशय आश्चर्यकर है, आपके जलका पान करनेसे किसी भी समय यमकी यातना (नरकवास) होता ही नहीं । क्योंकि यमराज भी अपनी बहिनके दुष्ट पुत्रोंको भी कैसे मारे ? अर्थात् नहीं मार सकते । आपका सेवन करनेसे जैसे श्रीगोपीजन भगवान् श्रीव्रजेश्वरको प्रिय बनी, उसी प्रकार जीव भी आपके सेवनसे भगवत्प्रिय बनता है ॥ ६ ॥

ममास्तु तव सन्निधौ तनुनवत्वमेतावता
नदुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।
अतोऽस्तु तव लालना सुरधुनी परं सङ्गमात्
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितेः ॥७॥

पदच्छेदः—मम, अस्तु, तव, सन्निधौ, तनुनवत्वम्, एतावता, न दुर्लभतमा, रतिः, मुररिपौ, मुकुन्दप्रिये, अतः अस्तु, तव, लालना, सुरधुनी, परम्, सङ्गमात्, तव, एव, भुवि, कीर्तिता न, तु कदापि, पुष्टिस्थितैः ॥ ७ ॥

हे मुकुन्दप्रिये !—हे श्री यमुना जी !

तव सन्निधौ—आप के समीपमें

मम—मेरा

तनुनवत्वम्—शरीरकी नूतनता

अस्तु एतावता—हो इतनेसे

मुररिपौ—श्रीकृष्णमें

रतिः—प्रीति

दुर्लभतमा, न—अत्यन्त दुर्लभ नहीं है ।

अतः, तव—इसलिये आपकी

लालना अस्तु—लालना हो

सुरधुनी—श्रीगंगाजी

तव, एव—आपके ही

सङ्गमात्—सङ्गमसे

भुवि, परम्—पृथ्वीमें अत्यन्त

कीर्तिता—प्रशंसायुक्त हुई

पुष्टिस्थितैः—पुष्टिमार्गमें स्थित वैष्णवोंके द्वारा

तु, कदापि—तो कभी भी

तव, विना—आपके विना

कीर्तिता, न—प्रशंसित नहीं है

भावार्थः—मुक्ति देनेवाले श्रीकृष्णकी प्रिया हे श्रीयमुनाजी ! आपके सन्निधानमें हमारा नवीन शरीर हो, केवल इतनेसे यानी शरीर परिवर्तन से ही मुररिपु श्रीकृष्णमें प्रीति अत्यन्त दुर्लभ नहीं अर्थात् सुलभ हैं । इसलिए आपकी स्तुति रूप लालना हो । श्रीगङ्गाजीने भी आपके ही संसर्ग से पृथ्वीमें प्रशंसा प्राप्त की है । परन्तु आपके संगम बिना पुष्टिस्थ जीवोंने अकेली गङ्गाजीकी भी स्तुति नहीं की ॥ ७ ॥

स्तुतिं तव करोति कः कमलजा सपत्नि प्रिये
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः।
इयं तव कथाधिका सकलगोपिकासङ्गम-
स्मरश्रमजलाणुभिः सकलगात्रजैः सङ्गमः ॥८॥

पदच्छेदः—स्तुतिम्, तव, करोति, कः, कमलजा, सपत्नि, प्रिये ! हरेः, यत् अनुसेवया, भवति, सौख्यम्, आमोक्षतः, इयं, तव, कथाधिका, सकलगोपिकासङ्गम स्मरश्रमजलाणुभिः, सकलगात्रजैः, सङ्गमः ॥ ८ ॥

हे कमलजासपत्नि !—हे श्री लक्ष्मीजी की सौतिन !
हे प्रिये !—हे श्रीयमुनाजी
तव, स्तुतिम्—आपकी स्तुति
कः करोति—कौन करता है ?
यत्, अनुसेवया—जिस सेवनसे
आमोक्षतः—मोक्ष पर्यन्त
सौख्यम्—सुख होता है
सकल—सम्पूर्ण
गात्रजैः—श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न हुए
सकलगोपिकासंगमस्मरश्रम-
जलाणुभिः—सर्व गोपीजनोंके सङ्गमसे पैदा हुए जो स्मरश्रमजलके बिन्दु उनसे
संगमः, भवति—समागम होता है
इयं तव—यह आपकी
कथाधिका—कथा अधिक है।

भावार्थः—हे लक्ष्मीजीकी सौतिन ! हे श्रीयमुनाजी ! आपकी स्तुति कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं कर सकता । क्योंकि श्रीहरिके पश्चात् श्रीलक्ष्मीजीके सेवन

करनेसे मोक्ष पर्यन्त सुख होता है; परन्तु आपकी यह कथा तो इससे भी अधिक है कि श्रीगोपीजनोंके समागमसे श्रीअंगोंसे प्रकट हुए स्मरश्रमके जो जलबिन्दु उनके साथ आपके संवनस संगम होता है ॥ ३ ॥

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ।
तया सकलसिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति
स्वभावविजयो भवेत् वदति वल्लभः श्रीहरेः ॥९॥

पदच्छेदः—तव, अष्टकम्, इदम्, मुदा, पठति, सूरसूते ! सदा, समस्त, दुरितक्षयः, भवति, वै, मुकुन्दे, रतिः, तया, सकलसिद्धयः, मुररिपुः, च, सन्तुष्यति स्वभावविजयः, भवेत्, वदति, वल्लभः, श्रीहरेः ॥ ९ ॥

हे सूरसूते !—हे सूर्यपुत्री श्रीयमुनाजी !

तव, इदम्—आपका यह

अष्टकम्—अष्टक

यः, सदा—जो सदैव

मुदा—हर्ष पूर्वक

पठति—पढ़ता है उसके

समस्तदुरितक्षयः — सम्पूर्ण पापोंका नाश

भवति—होता है

मुररिपुः—मुर नामक दैत्य के शत्रु श्रीभगवान्

संतुष्यित—परम प्रसन्न होतेहैं ।

कुमुन्दे—श्रीमुकुन्द भगवान्में

रतिः—प्रेम

भवति—होता है

च—और

वै—निश्चयही
तया—उस प्रीतिके द्वारा
सकलसिद्धयः—सब प्रकारकी सिद्धियों की प्राप्ति
(भवन्ति)—होती हैं (और)
स्वभावविजयः—अपने स्वभाव पर विजय
भवेत्—होता है, ऐसा
श्रीहरेः—श्रीहरिके
बल्लभः—श्रीवल्लभाचार्यजी
वदति—कहते हैं।

भावार्थः—हे सूर्यपुत्रि ! आपके इस अष्टकका जो प्रसन्नता पूर्वक निरन्तर पाठ करता है उसके समस्त पाप नष्ट होकर, निश्चय ही मुकुन्द भगवानमें प्रीति होती है। इस प्रीतिके प्राप्त करनेसे सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, तथा स्वभावका विजय होता है। अर्थात स्वभाव अपने अनुकूल हो जाता है। इस प्रकार श्रीहरिके प्रिय, श्रीमद्वल्लभाचार्यजी कहते हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं, श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णं।

२—बालबोधः

—○:*:○—

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम्।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् ॥१॥

पदच्छेदः—नत्वा, हरिम्, सदानन्दम्, सर्वसिद्धान्त-संग्रहम्, बालप्रबोधनार्थाय, वदामि, सुविनिश्चितम्। ।१ ॥

सदानन्दम्—सदानन्दरूप
हरिम्—श्रीकृष्णको
नत्वा—नमन करके
बालप्रबोधनार्थाय—बालकोंके सम्यक् ज्ञानके लिये
सुविनिश्चितम्—विशेष रूपसे निश्चय किया हुआ
सर्वसिद्धान्तसंग्रहम्—समस्त सिद्धान्तोंका संग्रह
वदामि—मैं कहता हूँ।

भावार्थः—सदा आनन्द रूप हरिको नमस्कार करके बालकोंके जाननेके लिये अच्छी तरह विचार पूर्वक निश्चय किया हुआ सब सिद्धान्तोंका स्वरूप कहता हूँ ॥ १ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्
जीवेश्वरविचारेण द्विधा ते हि विचारिताः ॥२॥

पदच्छेदः—धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चत्वारः, अर्थाः, मनीषिणाम्, जीवेश्वरविचारेण, द्विधा, ते, हि, विचारिताः ॥ २ ॥

मनीषिणाम्—बुद्धिमान पुरुषोंके
धर्मार्थकाममोक्ष्याख्याः—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामके
चत्वारोऽर्थाः—चार पुरुषार्थ
जीवेश्वरविचारेण—जीव और ईश्वरके विचारसे
ते, हि—वे निश्चयरूपसे
द्विधा—दो प्रकारसे
विचारिताः—विचारे गये हैं।

भावार्थः—विवेकी पुरुषोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार पुरुषार्थ कहे है। वे दो प्रकारके हैं। एक तो ईश्वरके कहे हुए हैं और दूसरे जीव के कहे हुए हैं ॥ २ ॥

अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्यसाधनसंयुताः ।
लौकिका ऋषिभिः प्रोक्तास्तथैवेश्वरशिक्षया ॥३॥

पदच्छेदः—अलौकिकाः, तु, वेदोक्ताः, साध्यसाधन संयुताः, लौकिकाः, ऋषिभिः, प्रोक्ताः, तथा, एव ईश्वर-शिक्षया ॥ ३ ॥

साध्यसाधनसंयुताः—साध्य और साधनों से युक्त
अलौकिकाः—अलौकिक पुरुषार्थ
तु—तो
वेदोक्ताः—वेदमें कहे हैं !
तथा, एव—उसी प्रकार ही
ईश्वरशिक्षया—भगवदाज्ञासे
ऋषिभिः—ऋषियों ने
लौकिकाः—लौकिक पुरुषार्थ
प्रोक्ताः—कहे हैं

भावार्थः—ईश्वरके कहे हुए अलौकिक पुरुषार्थोंका साधन फल सहित वेद में वर्णन है । ईश्वरकी ही प्रेरणासे ऋषियोंके द्वारा बनाये हुए लौकिक पुरुषार्थोंका वर्णन पुराणादिमें है ॥ ३ ॥

लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यतः स्थिताः ।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ॥४॥
त्रिवर्गसाधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ।

पदच्छेदः—लौकिकान्, तु, प्रवक्ष्यामि, वेदात्, आद्याः यतः, स्थिताः, धर्मशास्त्राणि, नीतिः, च, कामशास्त्राणि, च क्रमात्, त्रिवर्गसाधकानि, इति, न, तन्निर्णयः, उच्यते ॥४॥५॥

आद्याः—अलौकिक (ईश्वरसे-विचार किये गये पुरुषार्थ)
वेदात्—वेदसे
स्थिताः—प्रसिद्ध हैं।
तु—और
लौकिकान्—लौकिकपुरुषार्थोंको
प्रवक्ष्यामि—अच्छीरीतिसे कहता हूँ
त्रिवर्गसाधकानि—धर्म, अर्थ, काम इनको प्राप्त करानेवाले
धर्मशास्त्राणि—धर्मशास्त्र
च नीति,—और नीतिशास्त्र
च—और
कामशास्त्राणि—कामशास्त्र
क्रमात्—क्रमसे
इति—इसलिये
तन्निर्णयः—उसका निर्णय
न, उच्यते—नहीं कहते हैं।

भावार्थ—अब लौकिक पुरुषार्थोंका निर्णय कहता हूँ, अलौकिकपुरुषार्थोंका तो वेदमें ही निर्णय है। धर्मशास्त्र धर्मका साधक है। नीति-शास्त्र अर्थका साधक है और काम-शास्त्र कामका साधक है। इन तीनों शास्त्रोंका निर्णय मैं नहीं कहता हूँ ॥ ४-५ ॥

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः ॥५॥
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्ययोगौ प्रकीर्तितौ।
त्यागात्यागविभागेन साङ्ख्ये त्यागः प्रकीर्तितः॥६॥
अहन्तामममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ॥७॥

पदच्छेदः—मोक्षे, चत्वारि, शास्त्राणि, लौकिके, परतः, स्वतः, द्विधा, द्वे द्वे, स्वतः, तत्र, सांख्ययोगौ, प्रकीर्तितौ

त्यागात्यागविभागेन, सांख्ये, त्यागः प्रकीर्तितः, अहंता-ममतानाशे, सर्वथा, निरहंकृतौ, स्वरूपस्थः, यदा, जीवः, कृतार्थः, सः, निगद्यते ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

लौकिके—लौकिक पुरुषार्थ
मोक्षे—मोक्षमें
चत्वारि—चार
शास्त्राणि—शास्त्र हैं
परतः—दूसरे के द्वारा मोक्ष
स्वतः—अपने द्वारा मोक्ष
तत्र, द्वे द्वे—उनमें दो दो
द्विधा—इन दो प्रकारों से
स्वतः—स्वतंत्र रीति से
त्यागात्यागविभागेन—त्याग और अत्याग विभाग द्वारा
सांख्ययोगौ—सांख्य और योग कहे हुए हैं उनमें से
सांख्ये—सांख्य में (ज्ञानमार्ग में)
त्यागः—त्याग
प्रकीर्तितः—कहा है।
सर्वथा | सब प्रकारसे
निरहंकृतौ—अहंकार रहित
अहंताममतानाशे—अहंता ममताका नाश होने से जब
जीवः—जीव
यदा—जिस समय
स्वरूपस्थः—स्वरूपमें स्थिति करनेवाला होता है तब
सः—वह जीव
कृतार्थः—कृतार्थ
निगद्यते—कहा जाता है

भावार्थः—लौकिकमें मोक्षके साधक चार शास्त्र हैं और ये दो भागोंमें विभक्त हैं। एक तो दूसरेकी कृपासे मोक्ष लाभ करना, उसमें दो शास्त्र हैं, और स्वयं अपने पुरुषार्थसे मोक्ष लाभ करना, इसमें भी दो शास्त्र हैं। जो कि सांख्य और योग नामसे प्रसिद्ध हैं। सांख्य शास्त्रका मत है, कि सब वस्तुओंका त्याग कर दिया जाय, और योग शास्त्रका मत

है कि त्याग नहीं किया जाय । सांख्य मतके अनुसार सबका त्याग करनेसे अहंता अर्थात् अहंकार और ममता अर्थात् मोहका नाश हो जाता है, और अहंकार रहित जीव जब अपने ही स्वरूपमें स्थित हो जाय तब कृतार्थी माना जाता है ॥ ५-६-७ ॥

तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता ।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः ॥८॥

पदच्छेदः—तदर्थम्, प्रक्रिया, काचित्, पुराणे, अपि, निरूपिता, ऋषिभिः, बहुधा, प्रोक्ताः, फलम्, एकम्, अबाह्यतः ॥ ८ ॥

तदर्थम्—मोक्षके लिये
पुराणे—पुराणोंमें
काचित्—कोई कोई
प्रक्रिया, अपि—कम भी
निरूपिता—निरूपण किया है ।
ऋषिभिः—ऋषियों केद्वारा
बहुधा—अनेक प्रकारसे
प्रोक्ताः—कही हुई हैं ; किन्तु
अबाह्यतः—अन्तरङ्ग
फलम् एकम्—फल एक ही है

भावार्थः—उस मोक्षके लिये ऋषियोंने कोई-कोई पुराणोंमें साधन करनेके लिये बहुत-सी क्रियाएं भी निरूपण की हैं; किन्तु इनके अन्तरंग होनेके कारण उसका फल भी एक ही है ॥ ८ ॥

अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि ।
यमादयस्तु कर्तव्याः सिद्धेयोगे कृतार्थता ॥९॥

पदच्छेदः—अत्यागे, योगमार्गः, हि, त्यागः, अपि,

मनसा, एव, हि, यमादयः, तु, कर्तव्याः, सिद्धे, योगे, कृतार्थता ॥ ९ ॥

अत्यागे——नहीत्यागनेमें
योगमार्गः——योगमार्ग है
हि, त्यागः——इसमें त्याग
अपि, मनसा——भी मनद्वारा
हि——निश्चय है
यमादयः——यमनियमादि इसमें
कर्तव्याः—पालन करने योग्य हैं।
योगे——योग के
सिद्धे—सिद्ध होने पर
कृतार्थता——पूर्णता होती है।

भावार्थः—योगमार्गके साधनमें साक्षात् सब वस्तुओंका त्याग नहीं हैं, और त्याग बिना योग सिद्ध हो नहीं सकता इसलिये मनसे त्याग करना चाहिये, और यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि इन अष्टाङ्ग योगका साधन क्रमानुसार करे। जिससे मन निश्चल होकर योग सिद्ध होता है, और ऐसा होनेसे ही कृतार्थता मानी जाती है ॥ ९ ॥

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते।
ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते ॥१०॥

पदच्छेदः——**पराश्रयेण, मोक्षः, तु, द्विधा, सः, अपि, निरूप्यते, ब्रह्मा, ब्राह्मणताम्, यातः, तद्रूपेण, सुसेव्यते ॥१०॥**

पराश्रयेण——दूसरेके आश्रयसे
तु, मोक्षः——जो मोक्ष है
सः, अपि——वह भी
द्विधा——दो प्रकारसे

निरूप्यते—निरूपित है
ब्रह्मा—ब्रह्माजी
ब्राह्मणताम्—ब्राह्मणत्वको
यातः—प्राप्त हुए हैं। अतएव
तद्रूपेण—ब्राह्मण के रूप से
सुसेव्यते—सम्यक् सेवित हैं।

भावार्थः—परायेके आश्रयसे मोक्ष लाभ करनेके दो मार्ग हैं सो मैं बतलाता हूँ। ब्रह्माजी तो ब्राह्मणत्वको प्राप्त हैं इसलिये ब्राह्मण रूपसे उनकी सेवा उपासना आदि होती है॥ १०॥

ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्।
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ॥११॥
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥२१॥

पदच्छेदः—ते, सर्वार्थाः, न, च, आद्येन, शास्त्रम्, किञ्चित्, उदीरितम्, अतः, शिवः, च, विष्णुः, च, जगतः, हितकारकौ, वस्तुनः स्थितिसंहारौ, कार्यौ, शास्त्रप्रवर्तकौ, ब्रह्म, एव, तादृशम्, यस्मात्, सर्वात्मकतया, उदितौ॥ ११-१२॥

ते—वे
सर्वार्थाः—सब पुरुषार्थ (धर्म अर्थ काम मोक्ष)
आद्येन—ब्रह्माके द्वारा
न—नहीं होते हैं उन्होंने
किञ्चित्, शास्त्रम्—कुछ शास्त्र
उदीरितम्—कहा है
अतः, शिवः—अतएव शिव
च, विष्णुः—और विष्णु
जगतः—जगतके
हितकारकौ—हित करनेवाले हैं।

वस्तुनः—वस्तुमात्रकी
स्थितिसंहारौ—स्थिति और संहार।
कार्यौ—करनेवाले तथा
शास्त्रप्रवर्तकौ—शास्त्रके प्रवर्तक हैं।
यस्मात्—जिस कारणसे
ब्रह्म, एव—ब्रह्म ही
तादृशम्—वैसा
सर्वात्मकतया—सर्वात्मकरूप से
उदितौ—ये दोनों कहे हुए हैं

भावार्थः—चारों पुरुषार्थ ब्रह्मासे सिद्ध भी नहीं हो सकते उन्होंने तो किञ्चित् शास्त्र निरूपण किया है जिससे जीवोंका कल्याण होता है। अतएव शिव और विष्णु जगत्के हितकारी हैं। उसके स्थिति और संहार करनेमें भी दोनों समर्थ हैं और शास्त्र के प्रवर्तक हैं, और शास्त्रोंमें दोनोंकी सर्वात्मकता कही है इसलिये मूल पुरुष ब्रह्म हैं ॥ ११–१२ ॥

निर्दोषपूर्णगुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ॥१३॥
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेतिविनिश्चयः ।
लोकेऽपियत् प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित्।१४

पदच्छेदः—निर्दोषपूर्णगुणता, तत्तत्, शास्त्रे तयोः, कृता, भोगमोक्षफले, दातुम्, शक्तौ, द्वौ- अपि, यद्यपि- भोगः, शिवेन, मोक्षः, तु, विष्णुना इति, विनिश्चयः लोके- अपि, यत्, प्रभुः, भुङ्क्ते, तत्, न, यच्छति- कर्हिचित् । १३–१४ ॥

तत्तत्—उन उनके प्रतिपादक
शास्त्रे—शास्त्रोंमें
निर्दोषपूर्णगुणता—निर्दोषता एवं पूर्ण गुणता उनकी
तयोः—शिव विष्णु दोनोंकी
कृता—प्रतिपादन की है
यद्यपि—यद्यपि
द्वौ, अपि शिवविष्णु दोनों भी
भोगमोक्षफले—भोग और मोक्षफल
दातुम्—देनेको
शक्तौ—समर्थ हैं, तथापि
शिवेन—शिवजीके द्वारा
भोगः तु—भोग और
विष्णुना—विष्णुके द्वारा
मोक्षः—मोक्ष
इति—इस प्रकार
विनिश्चयः—निर्णय किया है
लोके, अपि—लोकमें भी
यत्, प्रभुः—जो स्वामी
भुङ्क्ते, तत्—भोगता है वह
कर्हिचित्—कभी भी सेवकको
न, यच्छति—नहि देते हैं।

भावार्थः—उनके शास्त्रोंमें अर्थात् शैवपुराणोंमें शिवकी और विष्णुपुराणोंमें विष्णुकी निर्दोष पूर्णगुणता लिखी है, यद्यपि भोग और मोक्षरूपी फल देनेमें दोनों ही समर्थ हैं! तो भी गुणावतारमें तो शिवसे भोगकी और विष्णुसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। लोकमें भी यह बात प्रसिद्ध हैं कि स्वामीके भोगनेकी वस्तु दूसरेको कदापि नहीं मिल सकती ॥ १३-४४ ॥

अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि।
नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः ॥ ५ ॥

पदच्छेदः—अतिप्रियाय, तत्, अपि, दीयते, क्वचित्-एव, हि, नियतार्थप्रदानेन, तदीयत्वम्, तदाश्रयः ॥१५॥

तदपि—तो भी
अतिप्रियाय—अत्यन्त प्रिय भक्तोंको
क्वचित्—किसी समय
हि, एव—निश्चय ही मोक्ष
दीयते—देते ही हैं
नियतार्थप्रदानेन—नियमित अर्थके दान द्वारा
तदीयत्वम्—तदीयता तथा
तदाश्रयः—उनका आश्रय सिद्ध होता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—तथापि कोई अत्यन्त प्यारा हो तो उसको कुछ दे देते हैं। नित्य प्रति जो वस्तु प्राप्त हो वह उनको समर्पण की जाय और उनमेंसे प्रत्येकको प्रसन्न करनेका यही साधन है ॥ १५ ॥

प्रत्येकं साधनं चैतद् द्वितीयार्थे महान्श्रमः ।
जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ॥१६॥

पदच्छेदः—प्रत्येकम्, साधनम्, च, एतत्, द्वितीयार्थे, महान्, श्रमः जीवाः, स्वभावतः, दुष्टाः, दोषाभावाय, सर्वदा ॥१६॥

प्रत्येकम्—प्रत्येक देवता
एतत्—दोनों फलों के
साधनम्—साधन है
द्वितीयार्थे—दूसरेके अर्थदानमें
महान्—अत्यन्त
श्रमः—परिश्रम है
जीवाः—जीव
स्वभावतः—स्वभावसे
दुष्टाः—दुष्ट हैं
सर्वदा—सब प्रकारसे
दोषाभावाय—दोषकी निवृत्तिके लिए

भावार्थः—उनकी भक्ति की जाय और उनका आश्रय किया जाय, परन्तु मोक्ष लाभ करनेके लिए तो महान् परिश्रम करना होगा। जीव स्वभावसे ही दुष्ट है इसलिए इसे निर्दोष बनानेके लिए सदा श्रवण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति करनी चाहिये ॥१६॥

श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति ।
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा ॥१७॥

पदच्छेदः—श्रवणादि, ततः, प्रेम्णा, सर्वम्, कार्यम्, हि, सिद्धयति, मोक्षः तु, सुलभः, विष्णोः, भोगः, च, शिवतः, तथा ॥१७॥

श्रवणादि—श्रवणादि नवधा भक्ति
प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक करनी
ततः—इससे
सर्वम्, कार्यम्—समस्त कार्य
सिद्धयति—सिद्ध होते हैं
विष्णोः—विष्णुसे
मोक्षः, तु—मोक्ष तो
सुलभः—सुलभ है
तथा, भोगः, तु—और भोगतो
शिवतः—शिवजीसे,
सिद्धयति—सिद्धि होता है

भावार्थः—ऐसा करनेसे जब भगवान्में प्रेम हो जावेगा तब सब कार्य सिद्ध हो जायंगे। मोक्षकी प्राप्ति विष्णुसे सुलभ है और भोगकी प्राप्ति शिवसे सुलभ है ॥१७॥

समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ।
अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः ॥१८॥

पदच्छेदः—समर्पणेन, आत्मनः, हि, तदीयत्वम्, भवेत्, ध्रुवम्, अतदीयतया, च, अपि, केवलः, चेत्, समाश्रितः ॥१८॥

हि—यह बताते हैं
आत्मनः—अपना सब कुछ
समर्पणेन—समर्पणके द्वारा
तदीयत्वम्—तदीयता
ध्रुवम्—निश्चय ही
भवेत् च—होती है और
अतदीयतया, अपि—तदीयतया न होनेपर भी
समाश्रितः—समाश्रित
चेत्—होना ही अर्थात् अच्छी तरह आश्रय रखना।

भावार्थः—उनको आत्म-समर्पण करनेसे और उनकी अटल भक्ति करनेसे ही प्राप्त होते हैं। जिन्होंने आत्म-निवेदन नहीं किया है, और ईश्वरका आश्रय लिया है ॥१८॥

तदाश्रयतदीयत्ववुद्ध्यै किंचित् समाचरेत् ।
स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ॥१९॥

पदच्छेदः—तदाश्रयः तदीयत्ववुद्ध्यै, किञ्चित्, समाचरेत् स्वधर्मम्, अनुतिष्ठन्, वै, भारद्वैगुण्यम्, अन्यथा ॥१९॥

तदाश्रयः—भगवान्का आश्रय
तदीयत्ववुद्ध्यै—और भगवदीयत्व बोधके निमित्त
किञ्चित्—कुछ भी
समाचरेत्—आचरण युक्त बने
स्वधर्ममनुतिष्ठन्—अपने धर्मका पालन करे
अन्यथा, वै—तो निश्चय ही
भारद्वैगुण्यम्—दुगुना भार होता है।

भावार्थः—वे प्रभुका आश्रय लेकर दासपनकी बुद्धि रखकर थोड़ाबहुत जो कुछ भी बन आवे मन लगाकर भगवद्धर्मका पालन करें, और अपने धर्ममें स्थित रहें यदि ऐसा न करें तो उसपर दुगुना भार चढ़ता है ॥१९॥

इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः ॥१९½॥

पदच्छेदः—इति, एवम्, कथितम्, सर्वम्, न, एतत्, ज्ञाने, भ्रमः, पुनः ॥ २० ॥

इत्येवम्—इस प्रकार
सर्वम्—समस्त
कथितम्, एतत्—कहा है इसके
ज्ञाने,—जानने पर फिर
पुनः—फिर
भ्रमः, न—भ्रम नहीं होता ।

भावार्थः—इस प्रकारसे सब सिद्धान्तका सार मैंने कहाहै इसको अच्छी प्रकार जान लेनेपर फिर सब लोगोंको किसी प्रकारका भ्रम नहीं रहेगा ॥ २० ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचि बालबोधग्रन्थः
सम्पूर्णः ।

३—सिद्धान्तमुक्तावली

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ॥१॥

पदच्छेदः—नत्वा, हरिम्, प्रवक्ष्यामि, स्वसिद्धान्त-विनिश्चयम्, कृष्णसेवा, सदा, कार्या, मानसी, सा, परा, मता ॥ १ ॥

हरिम्—श्रीहरिको

नत्वा—नमस्कार करके

स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्—अपने सिद्धान्तके विशेष निश्चय को

प्रवक्ष्यामि—स्पष्टतया कहता हूँ।

कृष्णसेवा—श्रीकृष्णकी सेवा

सदा—निरन्तर

कार्या—अवश्य करने योग्य है

सा, मानसी—वह मानसी

परा—उत्तम फलरूपा

मता—मानी हुई है।

भावार्थः—श्रीहरिको नमस्कार करके अपना विवेक पूर्वक निश्चय किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ। कृष्णकी सेवा सदा ही करनी चाहिये। वह मानसी सेवा सबमें उत्तम और परम फल रूप मानी जाती हैं ॥ १ ॥

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।
ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्मबोधनम् ॥ २ ॥

पदच्छेदः—**चेतः, तत्प्रवणम्, सेवा, तत्सिद्ध्यै, तनुवित्तजा- ततः, संसारदुःखस्य, निवृत्तिः, ब्रह्मबोधनम् ॥२॥**

चेतः—चित्तको

तत्प्रवणम्—श्रीकृष्णमें लगाना

सेवा—यह सेवा है।

तत्सिद्ध्यै—उस मानसी सेवा की सिद्धि के लिये।

तनुवित्तजा—तनुजा और वित्तजा सेवा है।

ततः—उससे

संसारदुखस्य—सांसारिक दुखोंकी

निवृत्तिः—निवृत्ति और

ब्रह्मबोधनम्—ब्रह्मका ज्ञान होता है।

भावार्थः—चित्तको प्रभुमें परोना अर्थात् लवलीन कर देना ही सेवा है, और उसकी सिद्धिके लिये, (तनुजा) शरीरसे, और (वित्तजा) द्रव्य से, प्रभुकी सेवा मन लगाकर करे। ऐसा करने से संसारके दुःखोंसे छुटकारा हो जाता है और ब्रह्मका यथार्थ स्वरूप जाननेमें आता है ॥ २ ॥

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्यादेकं तस्माद् विलक्षणम् ॥३॥

पदच्छेदः—परम्, ब्रह्म, तु, कृष्णः, हि, सच्चिदानन्दकम्, बृहत्, द्विरूपम्, तत् हि, सर्वम्, स्यात्, एकम्, तस्मात्, विलक्षणम् ॥३॥

हि—क्योंकि
परम्, ब्रह्म—पर ब्रह्म
तु, कृष्णः—तो कृष्णही हैं और
बृहत्—अक्षर ब्रह्म
सच्चिदानन्दकम्—अल्प, सत् चित्त आनन्द वाला है।
तत्—वह (अक्षर ब्रह्म)
द्विरूपम्—दो रूपवाला माना है
हि, एकम्—निश्चय ही एक
सर्वम्—सब जगत् रूप और
तस्मात्—उससे (जगद्रूपसे)
विलक्षणम्—पृथक् ज्ञानियोंसे उपासना करने योग्य है

सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म तो एक श्रीकृष्ण ही हैं। सत्, चित् और आनन्द रूपसे जो कि सबमें व्याप्त है वह अक्षर ब्रह्म कहलाता है। उस अक्षर ब्रह्मके दो स्वरूप हैं। एक तो "जगत्" रूप और दूसरा उससे विलक्षण है ॥ ३ ॥

अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा ॥४॥

पदच्छेदः—अपरम्, तत्र, पूर्वस्मिन्, वादिनः, बहुधा, जगुः । मायिकम्, सगुणम्, कार्यम्, स्वतन्त्रम्, च, इति न, एकधा ॥४॥

तत्र—पहिले कहे हुए उस

पूर्वस्मिन्—प्रपञ्चरूपी ब्रह्मके विषय में

वादिनः—विविधवाद वाले

अपरम्—दूसरे (वेदमत विरोध) मत को

बहुधा—विविध प्रकार से

जगुः—कहते हैं (वह इस प्रकार)

मायिकम्—मायावादि मायाका बनाया हुआ कहते हैं । और

सगुणम्—सांख्य मतवाले गुणों का कार्य्य है ।

कार्यम्—नैयायिक द्व्यणुक त्र्यणुकादिक्रम से ईश्वर का बनाया हुआ

स्वतन्त्रम्— (मीमांसक) अनादिकालसे ऐसा चला आ रहा है ।

च—और (बौद्ध, माध्यमिक सौत्रान्तिक, चार्वाक, लोकायतिक वाम और शाक्तादि वेद विरोधीमत वाले अपनी इच्छानुकूल जगत् प्रपञ्चके सम्बन्धमें कहते हैं ।

इति—इस प्रकार

एकधा, न—एक प्रकारसे नहीं कहकर भिन्न २ प्रकारसे कहते हैं ।

प्रथम कहे हुए उस प्रपञ्चरूपी ब्रह्मके विषयमें विविधवाद वाले दूसरे वेदमत विरोध मतवाले विविध प्रकारसे कहते हैं । शंकर मतवाले इस प्रकार मायाका बना हुआ कहते है, और सांख्यवाले गुणोंका कार्य्य, नैयायिक द्व्यणुकादि कमसे ईश्वरका बनाया हुआ, मीमांसक अनादिकालसे ऐसा ही चला आ रहा है, और बौद्ध, माध्यमिक, वैशेषिक, सौत्रान्तिक, आर्हन्त (जैन), चार्वाक,

लोकायतिक, वाम और शाक्त आदि वेदविरोध मतवाले अपनी इच्छानुकूल जगत् (प्रपञ्चके सम्बन्धमें) कहते हैं। अतः एक प्रकारसे नहीं कहकर भिन्न भिन्न प्रकारसे कहते हैं ॥ ४ ॥

तदेवैतत् प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।
द्विरूपं चापि गङ्गावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी ॥५॥
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा ।
मर्यादामार्गविधिना तथा ब्रह्मापि बुध्यताम् ॥६॥

पदच्छेदः—तत्, एव, एतत् प्रकारेण, भवति, इति, श्रुतेः, मतम्, द्विरूपम्, च, अपि, गङ्गावत्, ज्ञेयम्, सा, जलरूपिणी माहात्म्यसंयुता, नृणाम्, सेविताम्, भुक्ति-मुक्तिदा, मर्यादामार्गविधिना, तथा, ब्रह्म, अपि, बुध्य-ताम् ॥ ५-६ ॥

तत्—वह (अक्षर ब्रह्म)
एव—ही
एतत्प्रकारेण—इस जगत रीतिसे
भवति—होता है
इति—इस प्रकार
श्रुतेः मतम्—वेद का मत है।
च द्विरूपम्—और दो रूपवाला एक जगद्रूप और दूसरा अक्षर रूप
अपि—भी होता है
गङ्गावत्—गङ्गाजी की तरह
ज्ञेयम्—जानना (जैसे)
सा—वह (श्रीगङ्गाजी) एक
जलरूपिणी—जलरूपमें अधिभौतिक है।

माहात्म्यसंयुता—(अपने) माहात्म्यसे युक्त ऐसे (तीर्थरूपी)

मर्यादामार्गविधिना—मर्यादा-मार्गकी रीतिसे

सेवताम्—(स्नान दान पूजनादिसे) सेवा करनेवाले

नृणाम्—मनुष्यों को

भुक्ति मुक्तिदा—भोग और मोक्ष (फल) को देनेवाली है।

तथा—उसी प्रकार

ब्रह्म,अपि—अक्षर ब्रह्म भी

बुध्यताम्—समझना चाहिये।

परन्तु वेदका मत तो यह है कि जो अक्षर ब्रह्म है वही जगत् रूप बना हुआ है। "जगत्" रूप ब्रह्मके गङ्गाके समान दो रूप हैं। एक तो जैसे केवल जलरूपिणी गङ्गाजी हैं और दूसरी मर्यादामार्गकी विधिकी अनुसार माहात्म्य जानकर सेवन करनेवालोंको, भोग और मोक्ष की देनेवाली है। उसी प्रकार जगत्रूप ब्रह्मकोमानना चाहिये ॥ ५-६ ॥

तत्रैव देवतामूर्तिर्भक्त्या या दृश्यते क्वचित् ।
गङ्गायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये ॥७॥

पदच्छेदः—तत्र, एवं, देवतामूर्तिः, भक्त्या, या, दृश्यते, क्वचित्, गङ्गायाम्, च, विशेषेण, प्रवाहाभेदबुद्धये ॥७॥

तत्र—उन दो रूपवाली श्री गंगाजी में

एव—ही

या, देवता—जो देवतारूपी

मूर्तिः—मूर्तिवाली आधिदैविक गङ्गाजी हैं।

सा, भक्त्या—वह भक्ति द्वारा

गङ्गायाम्, च—गंगा प्रवाह में और

क्वचित्—किसी समय भक्तिकी उत्कर्षताके कारण अथवा गंगा द्वारा आदि किसी स्थल विशेषमें

विशेषेण—विशेषरूपसे भक्ति की अधिकता के कारण

प्रवाहाभेदबुद्धये—प्रवाहमें अभेद बुद्धि रखनेवालेके निमित्त ।

उस जल रूपिणी गङ्गाजीमें उसको विशेषताको जानकर अभेद बुद्धिसे जो भक्ति रखता है उसको गङ्गाजीका साक्षात् मूर्तिमान दर्शन होता है ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात् तया जले ।
विहिताच्च फलात् तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते ॥८॥

पदच्छेदः—प्रत्यक्षा, सा, न, सर्वेषाम्, प्राकाम्यम्, यात्, तया, जले, विहितात्, च, फलात्, त्, हि, प्रतीत्या, अपि, विशिष्यते ॥ ८ ॥

प्रत्यक्षा—प्रत्यक्ष दृष्टि सन्मुख

सर्वेषाम्—समस्त प्राणियोंको

दृश्यते—दीखती हैं तथापि

तया—उनसे परमभक्तको प्रत्यक्ष होनेवाली गंगाजीसे

जले—गंगाजलमें

प्राकाम्यम्—उत्तम कामना पूर्ति

स्यात्—होती है उसी प्रकार

तत् हि—वह निश्चय ही

विहितात्—शास्त्रोंमें कहे हुए

फलात्, च—फलसे और

प्रतीत्या अपि—प्रतीतिसे भी

विशिष्यते—अन्य जलकी अपेक्षा विशेष होती है ।

भावार्थ—प्रत्यक्षदृष्टि सन्मुख समस्त प्राणियोंको समानदीखती हैं तथापि उनसे परमभक्तको प्रत्यक्ष होनेवाली गङ्गाजीसे गङ्गाजलमें उत्तम कामनाकी पूर्ति होती है उसी प्रकार वह श्रीगङ्गाजीका जल निश्चय ही शास्त्रोंमें कहे हुए फलसे और प्रतीतिसे बड़ोंके अन्तः-

करणके विश्वासके द्वारा भी अन्य जलकी अपेक्षा विशेष होता है ॥ ८ ॥

यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ।
यथा देवी तथा कृष्णस्तत्राप्येतदिहोच्यते ॥९॥

पदच्छेदः—यथा, जलम्, तथा, सर्वम्, यथा, शक्ता, तथा, बृहत्, यथा, देवी, तथा, कृष्णः, तत्र, अपि, एतत्, इह, उच्यते ॥९॥

यथा—जिस प्रकार गंगाजी में
जलम्—दिखाई देनेवाला प्रवाह रूपी जल
तथा—उसी प्रकार
सर्वम्—सम्पूर्ण जगत् है और
यथा—जिस प्रकार गंगाजीमें
शक्ता—दोषनिवृत्ति करने वाली शक्तियुक्ता तीर्थरूपी गंगाजी हैं।
तथा—उसी प्रकार
बृहत्—अक्षर ब्रह्म है और
यथा—जिस प्रकार
देवी—देवतारूपी (आधिदैविक श्री गंगाजी हैं)
तथा—उसी प्रकार
कृष्णः—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णको समझना
इह—इस सिद्धान्तके विषयमें
तत्र—उस आधिदैविक विचारमें
अपि—भी
एतत्—यह आगे कहे जाने वाला
उच्यते—कहते हैं।

भावार्थः—जिस प्रकार जल रूपिणी गङ्गाजी हैं, उसी प्रकार जगत् रूप ब्रह्म हैं। जैसे तीर्थरूपिणी गङ्गाजी हैं वैसे अक्षर ब्रह्म हैं, और जैसे देवीरूपा साकार गङ्गाजी हैं वैसे कृष्ण हैं, ऐसा शास्त्रों में कहा हुआ है ॥ ९

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मविष्णुशिवास्ततः ।
देवतारूपवत् प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः ॥१०॥

पदच्छेदः—जगत्, तु, त्रिविधम्, प्रोक्तम्, ब्रह्मविष्णुशिवाः, ततः, देवतारूपवत्, प्रोक्ताः, ब्रह्मणि, इत्थम्, हरिः, मतः ॥१०॥

जगत् तु—जगत् तो
त्रिविधम्—(सत्त्वादि तीन गुणोंके कार्यसे) तीन प्रकारका
प्रोक्तम्—कहा है
ततः—इस कारण
ब्रह्मविष्णुशिवाः—ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनोंको
देवतावत्—उपास्य देवताके समान
प्रोक्ताः—कहा है
इत्थम्—इस प्रकार
ब्रह्मणि—अक्षर ब्रह्ममें
हरिः—दुःख हरनेवाले श्री भगवान् पुरुषोत्तम
मतः—आधिदैविकरूप माने हुए हैं।

भावार्थः—अक्षर ब्रह्ममें स्थित श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवतारूप होकर उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि जगतका सब कार्य करते हैं ॥ १० ॥

कामचारस्तु लोकेऽस्मिन् ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा ।
परमानन्दरूपे तु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः ॥११॥

पदच्छेदः—कामचारः, तु, लोके, अस्मिन्, ब्रह्मादिभ्यः, न, च, अन्यथा, परमानन्दरूपे, तु, कृष्णे, स्वात्मनि, निश्चयः ॥११॥

कामचारः—(उपासकोंकी) इच्छा द्वारा (उन लोक सम्बन्धी) प्राप्ति अथवा यह भोग

तु, ब्रह्मादिभ्यः—तो ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा

च—ही (होता है)

अन्यथा—दूसरे प्रकारसे ब्रह्मादिकके विना अथवा ब्रह्मादिकी इच्छाके विना

न—नहीं सिद्ध होता और

स्वात्मनि—अपने निजात्मरूप

परमानन्दरूपे—परमानन्द स्वरूप

कृष्णे—श्रीकृष्णमें ही

निश्चयः—(है अन्यथा काम समुदायसे भिन्न परमानन्द रूप) कामचार सिद्ध होता है।

भावार्थः—इच्छानुसार विषय भोगोंकी प्राप्ति तो ब्रह्मा आदि देवताओंसे मिलती है, और अपनी आत्मामें परमानन्द स्वरूपका दान श्रीकृष्णसे मिलता है ॥ ११ ॥

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।
आत्मनि ब्रह्मरूपे हि छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः॥ १२॥

पदच्छेदः—अतः, तु, ब्रह्मवादेन, कृष्णे, बुद्धिः, विधीयताम्, आत्मनि, ब्रह्मरूपे, हि, छिद्राः, व्योम्नि, इव, चेतनाः ॥१२॥

अतः, तु—अतएव पुनः

ब्रह्मवादेन—ब्रह्मवादके द्वारा

कृष्णे—परब्रह्म श्रीकृष्णमें

बुद्धिः—बुद्धि

विधीयताम्—विशेष रूपसे लगाना

ब्रह्मरूपे—ब्रह्मरूप

आत्मनि—अपनी आत्मामें

व्योम्नि—आकाशमें

छिद्राः—पृथक् छेद जैसे

दीखते हैं ।
इव—उसी प्रकार
चेतनाः—अन्तःकारणकी वृत्तियाँ हैं

भावार्थः—अतएव पुनः ब्रह्मवादके द्वारा परब्रह्म श्रीकृष्णमें अन्तःकरण विशेष रूपसे लगाना। ब्रह्मरूप अपनी आत्मामें आकाशमें जिस प्रकार अनन्त छिद्र दीखते हैं, उसी प्रकार अन्तः-करणकी वृत्तियाँ हैं चेतनाका अर्थ जीवात्मा भी लिया है ॥ १२ ॥

उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने ।
गङ्गातीरस्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति ॥१३॥

पदच्छेदः—उपाधिनाशे, विज्ञाने, ब्रह्मात्मत्वावबोधने, गंगातीरस्थितः, यद्वत्, देवताम्, तत्र, पश्यति ॥१३॥

यद्वत्—जिस प्रकार
गङ्गातीरस्थितः—गङ्गाजीपर स्थिति करनेवाला उनका भक्त
तत्र—उस आधिभौतिकरूप प्रवाहमें
देवताम्—आधिदैविक रूपी (मूर्तिमती) गङ्गजीको
पश्यति—देखता है ।
तथा—उसी प्रकार
उपाधिनाशे—(अविद्यारूप) उपाधि नाश होने पर
ब्रह्मात्मत्वावबोधने—(सम्पूर्ण जगतका) ब्रह्मात्मकतया बोधका
विज्ञाने—विशेष ज्ञान होनेपर

भावार्थः—जिस प्रकार गङ्गा तीरपर स्थित गङ्गाका भक्त देवतारूपी मूर्तिमती गङ्गाजीके दर्शन करता है । उसी प्रकार हृदयकी काम क्रोधादिक उपाधियोंका नाश होनेपर ब्रह्म और आत्माका अनुज्ञान होनेपर सवत्र भगवद्दर्शन होते हैं ॥१३॥

तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति ।
संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ॥
अपेक्षितजलादीनामभावात् तत्र दुःखभाक् ।
तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः १४-१५

पदच्छेदः—तथा, कृष्णम्, परम्, ब्रह्म, स्वस्मिन्, ज्ञानी, प्रपश्यति, संसारी, यः, तु, भजते, सः, दूरस्थः, यथा, तथा, अपेक्षितजलादीनाम्, अभावात्, तत्र, दुःखभाक् तस्मात्, श्रीकृष्णमार्गस्थः, विमुक्तः, सर्वलोकतः ॥१४-१५॥

ज्ञानी—ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुष
स्वस्मिन्—अपनेमें भक्तिद्वारा
परं, ब्रह्म—परब्रह्म
कृष्णम्—श्रीकृष्ण को
प्रपश्यति—अच्छी प्रकार दर्शन करता है ।
संसारी—संसारमें रहनेवाला
यः—जो भक्त
भजते—भगवानको भजता है ।
सः, तु—वह तो ।
यथा—जिस प्रकार
दूरस्थः—(श्रीगङ्गाजीसे) दूरदेशमें रहने वाला भक्त
अपेक्षितजलादीनाम्—अपेक्षित (स्नानादिकके लिये आवश्यक) जलादिकके
अभावात्—न प्राप्त होनेसे
तत्र—वहाँ
तथा—उस प्रकार (स्वाभीष्ट श्रीभगवानके दर्शनादि न मिलनेसे)
दुःखभाक्—दुख भोक्ता (बनता है)
तस्मात्—उस कारणसे
श्रीकृष्णमार्गस्थः—श्रीकृष्णके मार्गमें स्थित पुरुष

सर्वलोकतः—सम्पूर्ण लोकसे
विमुक्तः—विशेषमुक्त होकर

भावार्थः—उसी प्रकार कृष्णका भक्त ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मामें परब्रह्म कृष्णके दर्शन करता है। जिस प्रकार गङ्गाजीसे दूर देशमें रहनेवाला गङ्गाजीके जलकी अप्राप्तिके कारण दुःखी होताहै। जिनका मन अहन्ता ममता रूपी संसारमें लगा हुआ है वे भी भगवानके स्वरूपानन्दके सुखसे वञ्चित रहनेके कारण दुःखित रहते हैं। अतः जिन्होंने श्रीकृष्णके भक्तिमार्गमें प्रवेश किया है; वे सब सांसारिक उपाधियोंसे मुक्त हैं॥ १४–१५॥

आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत्।
लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा॥१६॥

पदच्छेदः—आत्मानन्दसमुद्रस्थम्, कृष्णम्, एव, विचिन्तयेत्। लोकार्थी, चेत्, भजेत्, कृष्णम्, क्लिष्टः, भवति, सर्वथा॥१६॥

आत्मानन्दसमुद्रस्थम्—आत्मा के आनन्दसागरमें विराजमान
कृष्णम्, एव—श्रीकृष्णको ही
विचिन्तयेत्—विशेषकर चिन्तवन करे। जो भक्त
लोकार्थी—लोक सम्बन्धी पदार्थोंकी इच्छावाला होकर
चेत्-कृष्णम्—यदि श्रीकृष्णका
भजेत्—भजता है तब वह
सर्वथा—सब प्रकारसे
क्लिष्टः—दुःखी
भवति—होता है।

भावार्थः—अपने आत्मानन्द समुद्रमें विराजमान श्रीकृष्णका ही चिन्तन करे। यदि लौकिक कामनाके निमित्त जो कोई कृष्णका भजन करे तो उसे बहुत कष्ट होता है॥ १६॥

क्लिष्टोपि चेद् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा।
ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु ॥१७॥

पदच्छेदः—क्लिष्टः, अपि, चेत्, भजेत्, कृष्णम्, लोकः, नश्यति, सर्वथा, ज्ञानाभावे, पुष्टिमार्गी, तिष्ठेत्, पूजोत्सवादिषु ॥१७॥

क्लिष्टः, अपि—दुःख पाकर भी
कृष्णम्—श्रीकृष्णको
चेत्—जो (लोकसे विरक्त होकर)
भजेत्—भजे।
सर्वथा—सम्पूर्ण
लोकः—अहंता ममतात्मक संसार
नश्यति—नष्ट होता है
पुष्टिमार्गी—पुष्टिमार्गीय भक्त
ज्ञानाभावे—ज्ञानके अभावमें अर्थात् स्वस्वरूप और भगवत् स्वरूपका ज्ञान न होने पर
पूजोत्सवादिषु—भगवत्पूजन उत्सवादिमें
तिष्ठेत्—स्थिति करे।

भावार्थः—कष्टोंको सहन करते हुए बराबर कृष्णका भजन करता ही जाय तो उसकी लौकिक कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। ज्ञानके अभावमें पुष्टिमार्गीय भक्त पूजा तथा उत्सव आदिमें नित्य तत्पर रहे ॥ १७ ॥

मर्यादास्थस्तु गङ्गायां श्रीभागवततत्परः।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इतिस्थितिः ॥१८॥

पदच्छेदः—मर्यादास्थः, तु, गङ्गायाम्, श्रीभागवत-तत्परः, अनुग्रहः, पुष्टिमार्गे, नियामकः, इतिस्थितिः ॥१८॥

मर्यादास्थः—मर्यादा मार्गमें रहनेवाला भक्त
तु—तो (ज्ञानके अभावमें)
श्रीभागवततत्परः—श्रीभागवत परायण होकर
गङ्गायाम्—श्रीगङ्गाजीके तीर पर रहे
पुष्टिमार्गे—शुद्ध पुष्टिमार्गमें
अनुग्रहः—श्रीप्रभुका अनुग्रह
नियामकः——नियामक है।
इति स्थितिः——इस प्रकारकी व्यवस्था है।

भावार्थः—मर्यादा मार्गीय भक्त गङ्गाके तीरपर निवास करके श्रीभागवतका पाठादि नित्यप्रति किया करे। शुद्ध पुष्टिमार्गमें श्रीप्रभुका अनुग्रह नियामक है ऐसी स्थितिमें इस प्रकारकी व्यवस्था है ॥ १८ ॥

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्ग एवं तस्मात् निरूपितः ।१९।

पदच्छेदः—उभयोः, तु, क्रमेण, एव, पूर्वोक्त, एव, फलिष्यति, ज्ञानाधिकः, भक्तिमार्गः, एव, तस्मात् निरूपितः ॥१९॥

उभयोः——दोनों (ज्ञानी भक्तको)
क्रमेण, एव——क्रमसे (प्रथम पुष्टिमार्गमें लेकर) ही
तु, पूर्वोक्तः——पुनः प्रथम कही हुई (मानसी सेवा)
एव—ही
फलिष्यति——सिद्ध होगी।
एवम्——इस प्रकार
भक्तिमार्गः——भक्तिमार्ग
ज्ञानाधिकः—ज्ञानमार्गसे श्रेष्ठ है
तस्मात्——इसलिये (गंगाजीके दृष्टान्त द्वारा)
निरूपितः——(विवेचन पूर्वक) निरूपण किया है।

भावार्थः—दोनों-ज्ञानी और भक्तको क्रमसे प्रथम पुष्टिमार्गमें लेकर ही पुनः प्रथम कही हुई मानसी सेवा सिद्ध होगी इस प्रकार प्रथम कथनानुसार भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे श्रेष्ठ है। इसलिये गङ्गाजीके दृष्टान्त द्वारा विवेचन पूर्वक निरूपण किया है ॥ १९ ॥

भक्त्यभावे तु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः ।
अन्यथाभावमापन्नस्तस्मात् स्थानाच्च नश्यति ॥२०॥

पदच्छेदः—भक्त्यभावे, तु, तीरस्थः, यथा दुष्टैः, स्वकर्मभिः । अन्यथा, भावम्, आपन्नः, तस्मात् स्थानात्, च, नश्यति ॥२०॥

यथा—जिस प्रकार
तीरस्थः—श्रीगंगाजीके तटपर स्थित रहनेवाला पुरुष
भक्त्यभावे—भक्तिके अभावमें
तु, दुष्टैः—तो दुष्टतापूर्ण
स्वकर्मभिः—अपने कर्मों द्वारा
अन्यथाभावम्—अन्यथाभाव (पाखण्डादि दोषोंको)
आपन्नः—प्राप्त होकर
तस्मात्, स्थानात्—उस पुनीत स्थानसे
च—भी
नश्यति—नाशको प्राप्त होता है

भावार्थः—जिस प्रकार श्रीगङ्गाजीके तटपर स्थित रहनेवाला पुरुष भक्तिके अभावमें अर्थात् भक्ति न हो, तो दुष्टता पूर्ण अपने कर्मों द्वारा अन्यथाभाव—पाखण्डादि दोषोंको प्राप्त होकर उस स्थानसे भी नाशको प्राप्त होता है ॥२१॥

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम् ।
एतद् बुद्ध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात् ॥२१॥

पदच्छेदः—एवम्, स्वशास्त्रसर्वस्वम्, मया, गुप्तम्, निरूपितम्, एतद्, बुध्वा, विमुच्येत, पुरुषः, सर्वसंशयात् ॥२१॥

एवम्—इस प्रकार
मया—मैंने (श्रीवल्लभाचार्यने)
स्वशास्त्रसर्वस्वम्—अपने शास्त्रका सर्वस्व रूप
गुप्तम्—जो गुप्त है वह भी
निरूपितम्—निरूपण किया है
एतत् बुद्ध्वा—इस हमारे कहे सिद्धान्तको जानकर
पुरुषः—कोई भी पुरुष
सर्वसंशयात्—सम्पूर्ण संशयोंसे
विमुच्येत—मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—इस प्रकार मैंने (श्रीवल्लभाचार्यजीने) अपने शास्त्रका सर्व स्वरूप जो गुप्त है, वह भी निरूपण किया है। इस हमारे कहे सिद्धान्तको जानकर कोई भी पुरुष सम्पूर्ण संशयोंसे मुक्त हो जाता है ॥२१॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्णा ॥ ३ ॥

४—पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः

पुष्टिप्रवाहमर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक्
जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च ॥१॥
वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः ।
भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥२॥

पदच्छेदः—पुष्टिप्रवाहमर्यादा, विशेषेण, पृथक्, पृथक्, जीवदेहक्रियाभेदैः, प्रवाहेण, फलेन, च। वक्ष्यामि,

सर्वसन्देहाः, न, भविष्यन्ति, यत्, श्रुतेः, भक्तिमार्गस्य, कथनात्, पुष्टिः, अस्ति, इति, निश्चयः ॥ १–२ ॥

पुष्टिप्रवाहमर्यादा—पुष्टि प्रवाह और मर्यादा मार्गीय जीवोंके
जीवदेहक्रियाभेदैः—जीव, देह और क्रिया भेदसे
च, प्रवाहेण—और प्रवाह तथा
फलेन—फलके भेद द्वारा
विशेषेण—विशेष रूप से
पृथक् पृथक्—भिन्न भिन्न
वक्ष्यामि—कहता हूँ।

यत्, श्रुतेः—जिनके सुननेसे
सर्वसन्देहाः—सब प्रकारके सन्देह
न, भविष्यन्ति—नहीं होंगे
भक्तिमार्गस्य—भक्तिमार्गके
कथनात्—कथनसे
पुष्टिः—पुष्टिमार्ग
अस्ति, इति—है, इस प्रकार
निश्चयः—निश्चय है।

भावार्थः—पुष्टि, प्रवाह, और मर्यादा, ये तीनों मार्ग पृथक्-पृथक् हैं। जिनके जीव, देह, क्रिया, प्रवाह (प्रवृति) और फल, इन पाँचोंको विशेष रूपसे पृथक्-पृथक् कहता हूँ, जिसके सुननेसे किसी प्रकारका भी संदेह नहीं रहेगा। शास्त्रोंमें जहाँ जहाँ भक्ति मार्गका निरूपण किया है वहाँ-वहाँ पुष्टिमार्ग समझना ॥ १–२ ॥

'द्वौ भूतसर्गौ' वित्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः ।
वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादापि व्यवस्थिता ॥३॥

पदच्छेदः—द्वौ, भूतसर्गौ, इति, उक्तेः, प्रवाहः, अपि, व्यवस्थितः । वेदस्य, विद्यमानत्वात्, मर्यादा, अपि, व्यवस्थिता । ३॥

द्वौ, भूतसर्गौ—भगवद्गीता के १६ वें अध्यायके छठे श्लोकमें दो प्रकारका भूतसर्ग
इति—इस प्रकार
उक्तेः—कथनसे
प्रवाहः, अपि—प्रवाह मार्ग भी
व्यवस्थितः—कथित है।
वेदस्य—वेदके
विद्यमानत्वात्—विद्यमान होनेसे
मर्यादा—मर्यादा मार्ग
अपि—भी
व्यवस्थितः—व्यवस्थित है।

भावार्थः—श्रीभगवद्गीताके "द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च" इस लोकमें दो प्रकारकी सृष्टि है, एक दैवी सृष्टि, और दूसरी आसुरी सृष्टि है, इस प्रमाणसे "प्रवाह मार्ग" भी है वर्णाश्रम धर्मादिकी मर्यादा बतलानेवाला "वेद" विद्यमान है। इसलिये "मर्यादा मार्ग" भी है॥ ३॥

कश्चिदेव हि भक्तो हि 'यो मद्भक्त' इतीरणात्।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीतिनिश्चयः॥४॥

पदच्छेदः—कश्चित्, एव, हि, भक्तः, हि, यः, मद्भक्तः, इति, ईरणात्, सर्वत्र, उत्कर्षकथनात्, पुष्टिः, अस्ति, इति, निश्चयः॥४॥

कश्चित्, एव—कोई एक ही
भक्तः, हि—भक्त ही
यः, मद्भक्तः—जो मेरा भक्त
इति—इस प्रकार
ईरणात्—कहनेसे
सर्वत्र—श्रीमद्भगवद्गीताके १२वें अध्याय में १३ श्लोक से २० श्लोक पर्यन्त (अद्वेष्टा इत्यादि)
उत्कर्षकथनात्—भक्तकी उत्कर्षता कहनेसे
पुष्टिः—पुष्टि मार्ग
निश्चयः, अस्ति—निश्चय है

भावार्थः—भगवद्गीतामें कहा है कि "कश्चिदेव हि भक्तो हि यो मद्भक्तः स मे प्रियः"। कोई विरलाही मेरा भक्त होता है और जो मेरा भक्त है, वह मुझको अत्यन्त प्यारा है। इस प्रकार भगवान्ने श्रीमुखसे भक्तकी सबसे श्रेष्ठता कही है। अतः निश्चय "पुष्टिमार्ग" भी है ॥ ४ ॥

न सर्वतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः।
'यदा यस्ये'ति वचनान्नाहं वेदैरितीरणात् ॥५॥

पदच्छेदः—न, सर्वः, अतः, प्रवाहात्, हि, भिन्नः, वेदात्, च, भेदतः, यदा, यस्य, इति, वचनात् न, अहम् वेदैः, इति, ईरणात् ॥५॥

यदा, यस्य—श्रीमद्भागवत के ४ स्कन्ध्य के २६ अध्याय में
इति—इस प्रकार के
वचनात्—वचनसे तथा
नाहंवेदैः—भगवद्गीता अ० ११ के ५३ श्लोक में
इति—पुष्टि भक्तके सम्बन्ध में स्पष्ट
ईरणात्—कथन से

सर्वः न,—सब जीव समान नहीं है
अतः—इसलिये यह पुष्टिमार्गीय भक्त
प्रवाहात्—प्रवाह से
भिन्नः, च—भिन्न है और
वेदात्, भेदतः—वेद से भिन्न होनेसे पुष्टिमार्ग प्रवाह मार्ग और मर्यादामार्ग ये तीनों भिन्न-भिन्न हैं, यह प्रमाणों से सिद्ध है।

भावार्थः—सब मार्गोंका पुष्टिमार्गके साथ सम्बन्ध नहीं हो सकता। भागवतमें लिखा है कि "यदा यस्यानुगृह्णाति भगवानात्म भावितः। स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्।" आत्माके प्यारे भगवान् जब इस जीवका ग्रहण करते हैं अर्थात् अपनाते हैं

तब वह लौकिक, और वैदिक, कामनाओंको त्याग देता है। गीतामें लिखा है कि "नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥" तूने जो मेरे स्वरूपका दर्शन अभी किया है वह दर्शन न तो किसीको वेदपाठ करनेसे हो सकता हैं, और न तपस्या करनेसे, न दान करनेसे, और न यज्ञादिसे ही हो सकता हैं। उपरोक्त श्रीभागवतके और गीताके प्रमाणोंसे यह बात विदित होती है कि पुष्टि-मार्गीय भक्तको लौकिक अलौकिक और वैदिक कर्म करनेसे कुछ अपराध वा हानि नहीं है। इसलिये पुष्टिमार्गको प्रवाह मार्ग और मर्यादा मार्गकी अपेक्षा नहीं है, क्योंकि यह मार्ग इनसे भिन्न है और परमोत्तम है ॥ ५ ॥

मार्गैकत्वेपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ ।
न तद् युक्तं सूत्रतो हि भिन्नो युक्त्या हि वैदिकः ॥६॥

पदच्छेदः—मार्गे, एकत्वे, अपि, चेत्, अन्त्यौ, तनू, भक्त्यागमौ, मतौ, न, तत्, युक्तम्, सूत्रतः, हि, भिन्नः,—युक्त्या, हि, वैदिकः ॥६॥

मार्गे—भक्तिमार्ग
एकत्वे, अपि—एक होने पर भी
अन्त्यौ—अन्तिम मर्यादा मार्ग और प्रवाह मार्ग
तनू—कुछ
भक्त्यागमौ—भक्ति देनेवाले
मतौ—माने गये हैं
चेत्, तत्—यदि ऐसा कहें तो वह
युक्तम्, न—ठीक नहीं है
हि, सूत्रतः—क्योंकि भक्ति सूत्र से
युक्त्या—युक्ति से
वैदिकः—वैदिक (मर्यादामार्ग)
भिन्नः—भिन्न है।

भावार्थः—यदि कोई कहे कि सब मार्ग भक्तिमार्ग के ही साधक हैं इसलिये इसीके अंग है। ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि भक्ति सूत्रकी और वेदकी युक्तिके अनुसार पुष्टिमार्ग दोनों; मार्गोंसे भिन्न है ॥ ६ ॥

जीवदेहकृतीनाञ्च भिन्नत्वं नित्यता श्रुतेः।
यथा तद्वत् पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः ॥७॥

पदच्छेदः—जीवदेहकृतीनाम्, च, भिन्नत्वम्, नित्यता, श्रुतेः यथा, तद्वत्, पुष्टिमार्गे, द्वयोः, अपि, निषेधतः ॥७॥

यथा—जिस प्रकार
जीवदेहकृतीनाम्—जीव देह और साधन इनकी
भिन्नत्वम्—भिन्नता
श्रुतेः—श्रुतिसे सिद्ध है
तद्वत्—उसी प्रकार
पुष्टिमार्गे—पुष्टिमार्गमें
नित्यता—नित्यता
श्रुतेः—श्रुतिसे सिद्ध है
द्वयोः—प्रवाहमार्ग और मर्यादा इन दोनों के।
अपि—भी
निषेधतः—निषेधसे

भावार्थः—जीव सब नित्य हैं और उनके देहकी कृति एक दूसरेसे विभिन्न है ऐसा वेदमें लिखा है इस प्रमाणसे—"पुष्टिमार्ग" दोनों मार्गोंसे भिन्न है ॥ ७ ॥

प्रमाणभेदाद् भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः
सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपाङ्गक्रियायुतम् ॥८॥

पदच्छेदः—प्रमाणभेदात्, भिन्नः, हि, पुष्टिमार्गः, निरूपितः, सर्गभेदम्, प्रवक्ष्यामि, स्वरूपाङ्गक्रियायुतम् ॥८॥

प्रमाणभेदात्—प्रमाण भेदसे
पुष्टिमार्गः—पुष्टिमार्ग
भिन्नः, हि—भिन्न अवश्य
निरूपितः—निरूपण किया है
स्वरूपाङ्गक्रियायुतम्—(अब) स्वरूप, अङ्ग, क्रिया सहित
सर्गभेदम्—सर्गभेदको
प्रवक्ष्यामि—विशेष रूपसे कहता हूँ।

भावार्थः—उपरोक्त प्रमाणानुसार "पुष्टिमार्ग" सबसे भिन्न है, ऐसा मैंने निरूपण किया है। अब सर्गभेदको उसके स्वरूप, अंग, और क्रिया सहित बतलाता हूँ॥ ८ ॥

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः ॥९॥

पदच्छेदः—इच्छामात्रेण, मनसा, प्रवाहम्, सृष्टवान्, हरिः। वचसा, वेदमार्गम्, हि, पुष्टिम्, कायेन, निश्चयः ॥९॥

हरिः—श्रीकृष्णने
मनसा—अपने मनसे
प्रवाहम्—प्रवाह सृष्टि
सृष्टवान्—उत्पन्न की
वचसा—अपनी वाणी के द्वारा
वेदमार्गम्—मर्यादा सृष्टिकी
हि, कायेन—एवं श्री अङ्गसे
पुष्टिम्—पुष्टि सृष्टि
निश्चयः—निश्चय (उत्पन्न की)

भावार्थः—प्रभुने अपनी इच्छा मात्रसे प्रवाही सृष्टि रची है और वाणीसे वेदमार्ग बनाया है, और पुष्टि सृष्टि अपने साक्षात श्रीअङ्गसे बनायी है ॥ ९ ॥

मूलेच्छातः फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च ।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा ॥१०॥

पदच्छेदः—मूलेच्छातः, फलम्, लोके, वेदोक्तम्, वैदिके, अपि, च, कायेन, तु, फलम्, पुष्टौ, भिन्नेच्छातः, अपि, न, एकधा ॥ १० ॥

लोके, फलम्—लोकमें फल
मूलेच्छातः—मूल इच्छा से
च, वैदिके—और मर्यादामार्गमें
अपि, वेदोक्तम्—भी वेदोक्त फल प्राप्ति होती है
पुष्टौ—पुष्टिमार्ग
तु, कायेन—तो श्रीअङ्ग द्वारा
फलम्—फल होता है
भिन्नेच्छातः—भगवानकी भिन्न भिन्न इच्छा से सृष्टि
एकधा—एक प्रकारकी
न—नहीं है ।

भावार्थः—प्रवाही सृष्टिको मूल इच्छाके अनुसार फल मिलता है और वैदिक सृष्टिको वेदमें लिखे अनुसार फल मिलता है और पुष्टि सृष्टिको प्रभुके स्वरूपानन्दका फल मिलता है । इस प्रकार फल भी सबको भिन्न भिन्न प्रकारसे मिलते हैं एक प्रकारसे नहीं ॥ १० ॥

'तानहं द्विषतो' वाक्याद् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ।
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः ॥११॥

पदच्छेदः—तान्, अहम्, द्विषतः, वाक्यात्, भिन्नाः, जीवाः, प्रवाहिणः, । अतः, एव, इतरौ, भिन्नौ, सान्तौ, मोक्षप्रवेशतः ॥ ११ ॥

तानहं द्विषतः—गीताजीके अ० १६ श्लो० १९ में जो कहा है।
वाक्यात्—इस वाक्यसे
प्रवाहिणः—प्रवाहमार्गीय
जीवाः, भिन्नाः—जीव भिन्न हैं
अतएव—इसलिये
इतरौ—(मर्यादा पुष्टिमार्गसे) दूसरे जीव
सान्तौ—अन्त वाले
मोक्षप्रवेशतः—मोक्षमें प्रवेश होनेसे
भिन्नौ—भिन्न हैं।

भावार्थः—गीताजीमें भगवानने कहा है कि "तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्॥ क्षिपाम्यजस्रमशुभा नासुरीष्वेव योनिषु॥" मैं उन द्वेष करनेवाले क्रूर नराधमोंको संसारमें अशुभ आसुरी योनिमें ही बारंबार फेंकता हूँ। इस गीताके प्रमाणानुसार प्रवाही जीव भिन्न हैं, और दूसरे मर्यादामार्गीय जीव प्रवाही जीवोंसे भिन्न हैं, क्योंकि अन्तमें उनको मोक्षका अधिकार है॥ ११॥

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्॥१२॥

पदच्छेदः—तस्मात्, जीवाः, पुष्टिमार्गे, भिन्नाः, एव, न, संशयः, । भगवद्रूपसेवार्थम्, तत्सृष्टिः, न, अन्यथा, भवेत् ॥१२॥

तस्मात्—इसलिये।
पुष्टिमार्गे—पुष्टिमार्गमें
जीवाः—जो जीव हैं
भिन्नाः—वे भिन्न
एव—ही हैं इसमें
संशयः, न—संशय नहीं है
तत्सृष्टिः—वह पुष्टिमार्गीयसृष्टि
भगवद्रूपसेवार्थम्—भगवद्रूप सेवाके लिये है।
अन्यथा—इसके अभावमें
न भवेत्—नहीं होती है

भावार्थः—इसलिये निःसन्देह पुष्टिमार्गीय जीव सबसे भिन्न हैं, और यह सृष्टि केवल भगवद्रूपकी सेवाके लिये ही बनायी गयी है। इसलिये इसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥१३॥

पदच्छेदः—स्वरूपेण, अवतारेण, लिंगेन, च, गुणेन, च। तारतम्यम्, न, स्वरूपे, देहे, वा, तत्क्रियासु, वा, ॥१३॥

स्वरूपेण—भक्तस्वरूपके द्वारा
अवतारेण—अवतारके द्वारा
लिङ्गेन—चिह्नके द्वारा
च, गुणेन—और गुणके द्वारा
तारतम्यम्—न्यूनाधिकता
न—नहीं है।
स्वरूपे—स्वरूपमें
देहे—देहमें
तत्क्रियासु—उनकी क्रियाओंमें
तारतम्यम्, न—तारतम्य नहीं है
वा—अथवा भगवानकी इच्छा से न्यूनाधिकता होती है।

भावार्थः—पुष्टिमार्गीयजीव, देहमें, चिह्नमें, क्रियामें, गुणोंमें, एक दूसरेसे न्यूनाधिक देखनेमें नहीं आते हैं, अर्थात् तीनों प्रकार के जीवोंके देहादि बाह्यदृष्टिवालों को एक समान दीखते हैं ॥१३॥

तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि ।
तेहि द्विधा शुद्धमिश्रभेदान्मिश्रास्त्रिधा पुनः ॥१४॥

पदच्छेदः—तथापि, यावता, कार्य्यम्, तावत् तस्य, करोति, हि। ते, हि, द्विधा, शुद्धमिश्रभेदात्, मिश्राः, त्रिधा, पुनः ॥ १४ ॥

तथापि—तो भी भगवान्
यावता—जितना
कार्यम्—कार्य कराना होय
तावत्—उतने प्रमाणमें
तस्य, हि—जीवका वैसाही भेद
करोति—करते हैं।
ते—वे पुष्टिमार्गीय जीव
शुद्धमिश्रभेदात् शुद्ध और मिश्र-के भेदसे
द्विधा—दो प्रकार के हैं।
पुनः—फिर
त्रिधा—तीन प्रकार के हैं।

भावार्थः—तो भी प्रभुको काम जितना जिससे कराना है उसमें न्यूनाधिकता करते हैं। वे पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकारके हैं। एक "शुद्धपुष्टि" और दूसरे "मिश्रपुष्टि"। फिर मिश्रपुष्टि तीन भागोंमें विभक्त हैं॥ १४॥

प्रवाहादिविभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये।
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः॥१५॥

पदच्छेदः—प्रवाहादिविभेदेन, भगवत्कार्यसिद्धये।
पुष्ट्या, विमिश्राः, सर्वज्ञाः, प्रवाहेण, क्रियारताः॥ १५॥

भगवत्कार्यसिद्धये—भगवत् कार्यकी सिद्धिके लिये
प्रवाहादिविभेदेन—प्रवाहादि-के विशेष भेदसे
पुष्ट्या— पुष्टिके द्वारा
विमिश्राः—मिश्रित (जीव)
सर्वज्ञाः—सर्वज्ञ होते हैं
प्रवाहेण—प्रवाहके द्वारा
मिश्राः—मिश्रित (जीव)
क्रियारताः—क्रियामें प्रीति-युक्त रहते हैं।

भावार्थः—एक तो "पुष्टिमिश्र" पुष्टि दूसरा "मर्यादामिश्र" पुष्टि तीसरा "प्रवाहीमिश्र" पुष्टि। इस प्रकारके भेद भगवान्ने अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये बनाये हैं॥ १५॥

मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णातिदुर्लभाः।
एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते॥१६॥

पदच्छेदः—मर्यादया, गुणज्ञाः, ते, शुद्धाः, प्रेम्णा, अतिदुर्लभाः। एवम्, सर्गः, तु, तेषाम्, हि, फलम्, तु, अत्र, निरूप्यते॥ १६॥

मर्यादया—मर्यादाके द्वारा
मिश्राः—मिश्रित (पुष्टिमर्यादा) जो जीव
ते, गुणज्ञाः—वे भगवद्गुणोंको जाननेवाले हैं ते हैं
प्रेम्णा—प्रेमके द्वारा
शुद्धाः—शुद्ध (शुद्धपुष्टि) जीव
अतिदुर्लभाः—अत्यन्त दुर्लभ हैं
एवम्, सर्गः—उस प्रकार सृष्टि
अत्र—अब यहाँ
तेषाम्—उन सब प्रकारके जीवोंका
फलम्,—फल
निरूप्यते—निरूपण करते हैं

भावार्थः—"पुष्टिविमिश्र" पुष्टिजीव हैं वे सभी बातोंको जताने वाले हैं। "प्रवाहमिश्र" पुष्टिजीव हैं वे काम-काजमें तत्पर रहते हैं। "मर्यादामिश्र" पुष्टि जीव हैं वे गुण गान करनेमें तत्पर रहते हैं, और आनन्द रूप "शुद्ध पुष्टि" अर्थात् जिनको प्रेम लक्षणा भक्ति सिद्ध होगयी है ऐसे जीव मिलने तो अत्यन्त दुर्लभ हैं, इस प्रकार सृष्टि है। अब उनके फलोंका निरूपण करता हूँ॥ १६॥

भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद्भुवि ।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ॥१७॥

पदच्छेदः—भगवान्, एव, हि, फलम्, सः, यथा, आविर्भवेत्, भुवि । गुणस्वरूपभेदेन, तथा, तेषाम्, फलम्, भवेत् ॥ १७ ॥

भगवान्, एव—भगवान् ही पुष्टिमार्गीय जीवोंके लिये
हि, फलम्—निश्चय फल है
गुणस्वरूपभेदेन—गुण तथा स्वरूप भेदके द्वारा
सः—वह
यथा,—जिस प्रकार
भुवि—पृथ्वीमें
आविर्भवेत्—अवतरित होते हैं
तथा—उसी प्रकार
तेषाम्—पुष्टिमार्गीय जीवोंको
फलम् भवेत्—फल होता है।

भावार्थः—पुष्टि मार्गीय जीवको भूतलपर आनेके पश्चात् गुण और स्वरूपके अनुसार जैसा उनका अधिकार है, भगवान् ही फलरूप हैं ॥१७॥

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित् ।
अहङ्कारेऽथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय हि ॥१८॥

पदच्छेदः—आसक्तौ, भगवान्, एव, शापम्, दापयति, क्वचित् । अहंकारे, अथवा, लोके, तत्, मार्गस्थापनाय, हि ॥ १८ ॥

आसक्तौ—मिश्र पुष्टि जीवलोकमें आसक्त होनेपर
क्वचित्,—कभी
भगवान्—भगवान्
एव, शापम्—ही शापको
दापयति—दिलाते हैं
अथवा—अथवा

अहंकारे—अहंकार होने पर
लोके तत्—लोकमें उस
मार्गस्थापनाय—मार्गकी स्थापना करनेके लिये
शापम्—शाप
दापयति—दिलाते हैं।

भावार्थः—भक्त लौकिक विषयोंमें आसक्त होजानेके कारण अथवा अहंकारी हो जाय तो कभी कुछ शाप भी दिला देते हैं; परन्तु वह शाप भी मार्गस्थापनके लिये दिलाया जाता है ॥१८॥

न ते पाखण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्वहेतवे ॥१९॥

पदच्छेदः—न, ते, पाखण्डताम्, यान्ति, न, च, रोगाद्युपद्रवाः। महानुभावाः, प्रायेण, शास्त्रम्, शुद्धत्वहेतवे॥१९॥

ते—वे शापित भक्तजन
पाखण्डताम्—पाखण्ड भावको
न, यान्ति—नहीं प्राप्त होते
च, न—और न
रोगाद्युपद्रवाः—रोगादि उपद्रवोंको
यान्ति—प्राप्त होते हैं।
प्रायेण—विशेष करके
शास्त्रम्—शास्त्रमें
महानुभावाः—महानुभावी होते हैं वह भगवानका शाप उनकी
शुद्धत्वहेतवे—शुद्धिके लिये होता है।

भावार्थः—शाप देनेपर उनमें पाखण्डता नहीं होती है, और न उनको रोग आदिसे उपद्रव होते हैं। वे तो महानुभाव अर्थात् बड़े ही महात्मा होते हैं! प्रायः उनकी शुद्धिके लिये शास्त्र (भागवत भगवद्गीतादि) का श्रवण पाठादि साधन है॥ १९॥

भगवत्तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि ।
लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्यात् तेषु नान्यथा ॥२०॥

पदच्छेदः—भगवत्तारतम्येन, तारतम्यम्, भजन्ति, हि । लौकिकत्वम्, वैदिकत्वम्, कापट्यत्, तेषु, न, अन्यथा ॥२०॥

भगवत्तारतम्येन—श्री भगवानके तारतम्यसे
हि, तारतम्यम्,—ही तारतम्यको
भजन्ति—भजते हैं
तेषु—पुष्टीमार्गीय जीवोंमें
वैदिकत्वम्—वैदिकपन और
लौकिकत्वम्—लौकिकपन
कापट्यात्—कपटसे है
अन्यथा—अन्यथा
न—नहीं है

भावार्थः—श्री भगवानकी इच्छाके भेदसे वे पुष्टिमार्गीय जीव तारतम्यभावको प्राप्त होते हैं, इन पुष्टिमार्गीय जीवोंमें लौकिक और वैदिकपन कापट्यसे अर्थात् भगवानको छोड़कर लौकिक वैदिक कर्मोंमें प्रीति न रहनेपर भी दिखाव मात्रके लिये उन कर्मोंमें प्रवृति रहती है अन्यथा इनमें रुचि नहीं होती ॥ २० ॥

वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।
सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथापरे ॥२१॥

पदच्छेदः—वैष्णवत्वम्, हि, सहजम्, ततः, अन्यत्र, विपर्ययः । सम्बन्धिनः, तु, ये, जीवाः, प्रवाहस्थाः, तथा, अपरे ॥२१॥

हि—इन पुष्टि जीवोंमें
वैष्णवत्वम्—वैष्णवता
सहजम्—स्वाभविक है ।
ततः—उससे

अन्यत्र—जीव और विषयोंमें
विपर्ययः—विपरीतता है
सम्बन्धिनः—सम्बन्धमें रहनेवाले
तु, ये जीवाः—तो जो जीव
प्रवाहस्थाः—प्रवाह मार्गमें स्थितिवाले
तथा—उसी प्रकार
अपरे—दूसरे जीव हैं।

भावार्थः -इन पुष्टिमार्गीय जीवोंमें वैष्णवता स्वाभाविक है इससे जीव और विषयोंमें विपरीतता है, और जो जीव प्रवाह मार्गमें स्थितिवाले हैं उसी प्रकार दूसरे भी जीव हैं ॥ २१ ॥

चर्षणीशब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ।
क्षणात् सर्वत्वमायान्ति रुचिस्तेषां न कुत्रचित्॥२२॥

पदच्छेदः—चर्षणीशब्दवाच्याः, ते, ते, सर्वे, सर्ववर्त्मसु। क्षणात्, सर्वत्वम्, आयान्ति, रुचिः, तेषाम्, न, कुत्रचित् ॥२२॥

ते—वे जीव
चर्षणीशब्दवाच्याः—चर्षणी शब्द द्वारा परिचय देने योग्य हैं।
ते, सर्वे—वे सब
सर्ववर्त्मसु—सब मार्गोंमें
क्षणात्—क्षणमात्रसे
सर्वत्वम्—तन्मयताको
आयान्ति—प्राप्त होते हैं
तेषाम्—उन चर्षणी जीवोंकी
कुत्रचित्—कहीं पर भी
रुचिः, न—रुचि नहीं रहती है।

भावार्थः—वे जीव चर्षणी शब्दके द्वारा परिचय देने योग्य हैं, वे सब मार्गोंमें क्षणमात्रके लिये तन्मयताको प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुत उन चर्षणी जीवोंकी कहीं पर भी रुचि नहीं रहती। चर्षणी शब्दका अर्थ कडछुल है। जिस प्रकार पाक बनाने अथवा परोसनेके

अवसर पर कडछुल खाद्य पदार्थोंके साथ तन्मयताको प्राप्त हो जाती है, वास्तविकमें कडछुलका किसी पदार्थसे दृढ़ सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार इन चर्षणी जीवोंके सम्बन्धमें समझना। श्रीमद्भागवतके "सचर्षणीनामुद्वाच्छुचोमृजन्" इस श्लोककी सुबोधिनीजी में चर्षणी जीवोंके सम्बन्धमें उल्लेख किया है॥ २२॥

तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलम्।
प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्॥२३॥

पदच्छेदः—तेषाम्, क्रियानुसारेण, सर्वत्र, सकलम्, फलम्। प्रवाहस्थान्, प्रवक्ष्यामि, स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्॥२३॥

तेषाम्—उन जीवोंको
क्रियानुसारेण-क्रियाके अनुसार
सर्वत्र—सब स्थानोंमें
सकलम्—सब प्रकारका
फलम्—फल प्राप्त होता है।
स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्—स्वरूप अङ्ग एवं क्रिया सहित
प्रवाहस्थ न्—प्रवाहमें रहनेवाले जीवोंको अब
प्रवक्ष्यामि—कथन करता हूँ।

भावार्थः—उन जीवोंको क्रियाके अनुसार सब स्थानोंमें सब प्रकारका फल प्राप्त होता है, अब स्वरूप, अङ्ग एवं क्रिया सहित प्रवाहमें रहनेवाले जीवोंका मैं कथन करता हूँ। इस कथनका प्रयोजन यह है कि हमारे पुष्टिमार्गीय दैवी जीव प्रवाही जीवोंको पहिचान कर उनसे सावधान रहें और अपने जीवनमें प्रवाही जीवोंके लक्षण किंवा कार्य्य न आ जायँ इसके लिये सदैव सचेत रहें॥ २३॥

जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे प्रवृत्तिं चे' ति वर्णिताः।
ते च द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञदुर्ज्ञविभेदतः॥२४॥

पदच्छेदः—जीवाः, ते, हि, आसुराः, सर्वे, प्रवृत्तिम्, च, इति वर्णिताः। ते, च, द्विधा, प्रकीर्त्यन्ते, हि, अज्ञदुर्ज्ञ-विभेदतः ॥ २४ ॥

ते, सर्वे—वे प्रवाही सब
जीवाः, हि—जीव निश्चय
आसुराः—असुर हैं।
प्रवृत्तिञ्च—गीता के अ० १६ श्लोक ७ में प्रवृत्ति शब्दसे
इति, वर्णिताः—इस प्रकारवर्णितहैं
हि—तथा
अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः—अज्ञ और दुर्ज्ञ भेदसे
ते, द्विधा—वे जीव दो प्रकारसे
प्रकीर्त्यन्ते—स्पष्टरूपसे कहे गये हैं

भावार्थः—वे सब आसुरी जीव हैं, उनके विषयमें भगवानने गीतामें कहा है कि "प्रवृत्तिं च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः। न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।" अ० १६ श्लोक ७ आसुर प्रवृत्ति और निवृत्तिको नहीं जानते अर्थात् किस कार्य्यमें प्रवृत्त होना तथा किससे निवृत्त होना ये नहीं जानते। इन आसुरी जीवोंमें न शुद्धता, न श्रेष्ठ आचार, न सत्यता ही रहती है। अज्ञ और दुर्ज्ञ भेदसे वे जीव दो प्रकारके कहे गये हैं ॥ २४ ॥

दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः।
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते ॥२५॥

पदच्छेदः—दुर्ज्ञाः, ते, भगवत्प्रोक्ताः, हि, अज्ञाः, तान्, अनु, ये पुनः। प्रवाहे, अपि, समागत्य, पुष्टिस्थः, तैः, न, युज्यते ॥ २५ ॥

ते, दुर्ज्ञाः—वे दुर्ज्ञेय
भगवत्प्रोक्ताः—भगवानके
द्वारा गीतामें कथित हैं।
तान्—उन असुर जीवोंका
अनु—अनुकरण करते हैं वे
अज्ञाः—अज्ञ हैं।
पुष्टिस्थः—पुष्टिमार्गवाले
प्रवाहे—प्रवाहमें
समागत्य—आकर
अपि, तैः—भी उनके साथ
न, युज्यते—नहीं मिलते।

भावार्थः—वे दुर्ज्ञेय भगवानके द्वारा गीतामें कथित हैं, और जो आसुरी जीवोंका अनुकरण करते हैं वे अज्ञेय हैं अर्थात् पहिचाननेमें नहीं आते हैं। पुष्टिमार्गवाले प्रवाहमें आकर भी उनके साथ नहीं मिलते हैं॥ २५॥

सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः॥२६॥

पदच्छेदः—सः, अपि, तैः, तत्कुले, जातः, कर्मणा, जायते, यतः॥ २६॥

सः, अपि—वह असुर भी
तैः—उनके साथ
तत्कुले—उनके कुलमें
जातः—पैदा हुआ
यतः—क्योंकि
कर्मणा—वेद विरोधादि कर्मोंसे
जायते—असुर होता है।

भावार्थः—वह असुर भी उनके साथ यदि उनके कुलमें पैदा हुआ तो वेद विरोधी कर्मों द्वारा असुर हुआ है॥ २६॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः॥४॥

श्रीगोकुलनाथजीका स्पष्टीकरण

पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेद ग्रन्थके सम्बन्धमें श्रीगुसाईं जीके चतुर्थ लालजी श्रीगोकुलनाथजी इस ग्रन्थकी अपूर्णताके सम्बन्धमें स्पष्टी-

करण करते हुए, जो अपनी व्याख्यामें आज्ञा करते हैं, उसका आशय इस प्रकार है। आधुनिक जीवोंके भाग्यदोषके कारण इसके आगेका भाग नहीं मिलता है। अतएव इस ग्रन्थके उपक्रम तथा उपसंहारकी एक वाक्यताके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं है। इस अन्तिम श्लोकके पश्चात् प्रवाह मार्गीय साधन, अङ्ग, क्रिया और फल तथा मर्यादा मार्गीय जीवोंके प्रयोजन, स्वरूप, अंग, क्रिया, साधन, फल जितना अपेक्षित है उतना नहीं मिलता है।

५--सिद्धान्तरहस्यम्

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥१॥

पदच्छेदः—श्रावणस्य, अमले, पक्षे, एकादश्याम्, महानिशि। साक्षात्, भगवता, प्रोक्तम्, तत्, अक्षरशः, उच्यते ॥१

श्रावणस्य—श्रावण मासके
अमले पक्षे—शुक्ल पक्षकी
एकादश्याम्—एकादशीकी
महानिशि—मध्य रात्रिमें
प्रकट होकर
साक्षात् भगवता—साक्षात् भगवानके द्वारा जो
प्रोक्तम्—विशेष रूपसे कहा गया
तत् अक्षरशः—वह प्रत्यक्षर
उच्यते—कहा जाता है ॥१॥

भावार्थः—श्रावणमासके शुक्लपक्षकी एकादशी (पवित्रा एकादशी) को मध्यरात्रिमें साक्षात् अर्थात् भगवान् श्रीगोवर्धनोद्धरणने प्रकट होकर जो कुछ कहा वह अक्षरशः मैं श्री वल्लभाचार्य कहता हूँ ॥ १ ॥

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषा पञ्चविधाः स्मृताः ॥२॥

पदच्छेदः—ब्रह्मसम्बन्धकरणात्, सर्वेषाम्, देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः, हि, दोषाः, पञ्चविधाः, स्मृताः ॥२॥

ब्रह्मसम्बन्धकरणात्—ब्रह्मसम्बन्ध करनेसे
सर्वेषाम्—समस्त
देहजीवयोः—देह और जीवोंके
हि—निश्चय ही
सर्वदोषनिवृत्तिः—समस्त दोषोंकी निवृत्ति होती है
दोषाः—दोष
पञ्चविधाः—पाँच प्रकार के
स्मृताः—कहे हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—समस्तके ब्रह्मसम्बन्ध करनेसे देह और जीव सम्बन्धी सर्व दोषोंकी अवश्य निवृति होती है। ये दोष पाँच प्रकारके कहे हुए हैं ॥ २ ॥

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः ।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथञ्चन ॥३॥

पदच्छेदः—सहजाः, देशकालोत्थाः, लोकवेदनिरूपिताः संयोगजाः, स्पर्शजाः, च, न, मन्तव्याः, कथञ्चन ॥ ३ ॥

लोकवेदनिरूपिताः—लोक और वेदमें निरूपण किये हुए
सहजाः—सहज
स्पर्शजाः—स्पर्शज दोष
कथञ्चन—किसी प्रकारके
देशकालोत्थाः—देश तथा काल से उत्पन्न होनेवाले दोष
संयोगजाः, च—संयोगज दोष और
न—नहीं
मन्तव्याः—मानने

भावार्थः—लोक और वेदमें निरूपण किये हुए सहज, देशज, कालज, संयोगज और स्पर्शज दोष किसी प्रकार भी नहीं मानने योग्य हैं। सहज दोष वे हैं जो जीवके साथ उत्पन्न होते हैं। देशज दोष उसे कहते हैं जो देशसे उत्पन्न होते हैं। कालज कालसे उत्पन्न होनेवाले, संयोगज संयोगसे उत्पन्न होनेवाले, स्पर्शज जो स्पर्शसे उत्पन्न होते हैं ॥३॥

अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन ।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत ॥४॥

पदच्छेदः—अन्यथा, सर्वदोषाणाम्, न, निवृत्तिः, कथञ्चन असमर्पितवस्तूनाम्, तस्मात्, वर्जनम्, आचरेत्॥४॥

अन्यथा—नहीं तो
कथञ्चन—किसी भी दूसरे प्रकारसे
सर्वदोषाणाम्—समस्त दोषोंकी
निवृत्तिः—निवृत्ति
न—नहीं होती
तस्मात्—इसलिये
असमर्पितवस्तूनाम्—असमर्पित वस्तुओं का
वर्जनम्—त्याग
आचरेत्—करे ॥४॥

भावार्थः—अन्यथा अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध किये बिना दूसरे प्रकारसे समस्त दोषोंकी किसी प्रकार निवृत्ति नहीं होती इसलिए ब्रह्म सम्बन्ध अर्थात् आत्मनिवेदन अवश्य कर्तव्य है असमर्पित वस्तुओंका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥४॥

निवेदिभिः समप्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः ।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणम् ॥५॥

पदच्छेदः—निवेदिभिः, समर्प्य, एव, सर्वम्, कुर्यात्, इतिस्थितिः, न मतम्, देवदेवस्य, सामिभुक्तं समर्पणम् ॥५॥

निवेदिभिः—जो भगवानको निवेदन कर चुके हैं वे वैष्णव

समर्प्य—भगवानको सब कुछ समर्पण करके

एव—ही

सर्वम्—सब कुछ वस्तुओं द्वारा

कुर्यात्—अपना निर्वाह करें

इतिस्थितिः—ऐसी भक्ति मार्ग की मर्यादा है

देवदेवस्य—देवोंके देव भगवान् श्रीकृष्णको

सामिभुक्त—अपनी अर्धभुक्त वस्तुका

समर्पणम्—अर्पण करना

न, मतम्—नहीं माना है।

भावार्थः—जिनका आत्मनिवेदन अर्थात् ब्रह्म सम्बन्ध हो चुका है वे समस्त वस्तुओंको भगवानके लिये समर्पण करके ही अपना सब कार्य करें, इस प्रकार भक्तिमार्गकी मर्यादा है। सामिभुक्त अर्थात् अर्धभुक्त वस्तुका समर्पण करना देवाधिदेव श्रीकृष्णके लिये योग्य नहीं है ॥ ५ ॥

तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ॥६॥

पदच्छेदः—तस्मात्, आदौ, सर्वकार्ये, सर्ववस्तुसमर्पणम्। दत्तापहारवचनम्, तथा, च, सकलम्, हरेः ॥६॥

तस्मात्—इसलिये

आदौ—प्रथम

सर्वकार्ये—समस्त कार्यों में

सर्ववस्तुसमर्पणम्—सब वस्तुएँ श्रीभगवानको समर्पण करनी

दत्तापहारवचनम्—भगवानको

समर्पित वस्तुको जीवके उपयोग में लेने की निषेधाज्ञावाले वाक्य

तथा—इसी प्रकार
हरेः—श्रीभगवानका
सकलम्—सब कुछ है।

भावार्थः—अतएव प्रथम समस्त कार्य्योंमें सब वस्तुएँ श्रीभगवानको समर्पण करनी चाहिये। भगवानको समर्पित वस्तुका उपयोग जीव अपने लिये न करें। दत्तापहार वचनसे भगवन्निवेदित वस्तुका उपयोग अपने लिये नहीं करना चाहिये। ये वचन भिन्नमार्ग अर्थात् पूजामार्गके लिये हैं, क्योंकि भक्तिमार्गकी रीतिके अनुसार सब कुछ श्रीहरिका ही है ॥ ६ ॥

न 'ग्राह्य' मितिवाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ॥
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ॥७½॥

पदच्छेदः—न, ग्राह्यम्, इति, वाक्यम्, हि, भिन्नमार्गपरम्, मतम्, सेवकानाम्, यथा, लोके, व्यवहारः, प्रसिध्यति, तथा कार्यम्, समर्प्य, एव, सर्वेषाम्, ब्रह्मता, ततः ॥७½॥

ग्राह्यम्—ग्रहण करने योग्य
न, इति—नहीं है इस प्रकारका
वाक्यम्—वचन
भिन्नमार्गपरम्—अन्य मार्गमें
मतम्—माना है।
यथा, लोके—जिस प्रकार लोकमें
सेवकानाम्—सेवकोंका
व्यवहारः—व्यवहार
प्रसिध्यति—सिद्ध होता है
तथा—उसी प्रकार
समर्प्य—भगवानको समर्पण करके
एव—ही सब कुछ
कार्यम्—करना चाहिये
ततः—भगवत्समर्पण से
सर्वेषाम्—समस्त पदार्थों को
ब्रह्मता—ब्रह्मता प्राप्त होती है।

भावार्थः—लोकमें सेवकोंका जिस प्रकार कार्य सिद्ध हो उस प्रकार सब कुछ भगवानको समर्पण करके ही सर्व कार्य्य करना उचित है; क्योंकि ऐसा करनेसे ही सबकी ब्रह्मता सिद्ध होती है ॥ ७॥ ॥

गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ।
गङ्गात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि ॥८½॥

पदच्छेदः—गङ्गात्वम्, सर्वदोषाणाम्, गुणदोषादिवर्णना । गङ्गात्वेन, निरूप्या, स्यात्, तद्वत्, अत्र, अपि, च, एव, हि ॥ ८½॥

सर्वदोषाणाम्—गंगाजीमें आये हुए अशुद्ध जलादि समस्त दोषोंका
गंगात्वम्—श्रीगंगाजीपन है
च—और
गुणदोषादिवर्णना—गुणदोषादिकोंका वर्णन
गंगात्वेन—गंगाजी रूपसे ही
निरूप्या—निरूपण योग्य है
तद्वत्, एव—उसी प्रकार ही
अत्रापि—ब्रह्मसम्बन्ध हो जाने की अवस्थामें भी
हि—प्रसिद्ध है।

भावार्थः—जिस प्रकार गङ्गाजीमें आनेवाले समस्त दोष और गुणोंका वर्णन न करके उन सबमें गंगापन ही है; इसलिये उनका गङ्गारूपसे निरूपण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार इस आत्मनिवेदनमें भी समझना। सारांश यह है कि गंगाजीमें मिलनेसे सभी पदार्थ गङ्गारूप बनजाते हैं; उसी प्रकार सब पदार्थ आत्मनिवेदन होने पर ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाते हैं ॥८½॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ॥५॥

६—नवरत्नम्

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।
भगवानपि पुष्टिस्थोन करिष्यति लौकिकीं च गतिम्१

पदच्छेदः—चिन्ता, का, अपित, न, कार्या, निवेदितात्मभिः, कदा, अपि, इति, भगवान्, अपि, पुष्टिस्थः, न, करिष्यति, लौकिकीम्, च, गतिम् ॥१॥

निवेदितात्मभिः — जिन्होंने प्रभुको सर्वसमर्पण किया है
कदापि—(उनको) कभी भी
कापि—किसी प्रकारकी भी
चिन्ता, न—चिन्ता नहीं
कार्या—करनी चाहिये क्योंकि
पुष्टिस्थः—अनुग्रहमें स्थित
भगवान्, अपि—भगवान् भी
लौकिकीम्,—लौकिक
गतिम्—गति
न, करिष्यति—नहीं करेंगे

भावार्थः—जिन्होंने प्रभुको आत्मनिवेदन किया है, उनको चाहिये कि कभी किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। अनुग्रह परायण भगवान् अङ्गीकृत जीवोंकी लौकिक गति नहीं करेंगे ॥१॥

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति ॥२।

पदच्छेदः—निवेदनम्, तु, स्मर्तव्यम्, सर्वथा, तादृशैः, जनैः, सर्वेश्वरः, च, सर्वात्मा, निजेच्छातः, करिष्यति ॥२॥

सर्वथा——सब प्रकारसे
तादृशैः——तादृशी
जनैः——भगवदीय जनोंके साथ
निवेदनम्, तु—निवेदन तो
स्मर्तव्यम्——स्मरणीय है।
सर्वेश्वरः——सबके नियामक
च——एवम्
सर्वात्मा——सर्वात्मा भगवान्
निजेच्छातः——स्वेच्छासे
करिष्यति—सेवकका सब कार्य करें

भावार्थः—पुष्टिमार्गीय जीव तादृशीय (भगवदीय) महानुभावोंके साथ निवेदनका विशेष रूपसे स्मरण करते रहें। भगवान् सबके ईश्वर अर्थात् सबके नियामक हैं, एवं सबके आत्मरूप हैं; वे अपनी इच्छासे यथोचित ही करेंगे। कोई टीकाकर "निजेच्छातः" का अर्थ अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार करेंगे, इस प्रकारका तात्पर्य निकालते हैं॥ २॥

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमितिस्थितिः।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिंता कास्वस्थसोऽपि चेत् ३॥

पदच्छेदः——सर्वेषाम्, प्रभुसम्बन्धः, न, प्रत्येकम्, इतिस्थितिः, अतः, अन्यविनियोगे, अपि, चिन्ता, का, स्वस्य, सः, अपि, चेत्॥ ३॥

सर्वेषाम्——सबका
प्रभुसम्बन्धः——प्रभुके साथ सम्बन्ध है
प्रत्येकम्, न——हरेकके साथ नहीं
इतिस्थितिः, न—यह बात नहीं है
अतः——अतएव
अन्यविनियोगे——दूसरेमें विनियोग होनेपर
अपि, स्वस्य——भी अपनेका
का, चिन्ता——क्या चिन्ता है।
सः, अपि——वह भी
चेत्——उनका ही है

भावार्थः—आत्मनिवेदन होनेके पश्चात् निवेदित समस्त पदार्थोंके साथ श्रीप्रभुका सम्बन्ध है। केवल जिन्होंने निवेदन किया है, उनका कोई भिन्न सम्बन्ध नहीं है। यदि ऐसा ही है तो फिर किसी पदार्थका अन्यमें विनियोग होनेपर चिन्ता करना उचित नहीं, क्योंकि वह भी तो भगवानका ही है ॥ ३ ॥

अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् ।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिवेदना ॥४॥

पदच्छेदः—अज्ञानात्, अथवा ज्ञानात्, कृतम्, आत्मनिवेदनम् । यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः, तेषाम्, का, परिवेदना ।४।

अज्ञानात्—अज्ञानसे
अथवा, ज्ञानात्—अथवा ज्ञानसे
यैः—जिन्होंने
आत्मनिवेदनम्—आत्म निवेदन किया है
तेषाम्—उनको
का, परिवेदना—क्या चिन्ता है
यैः—जिन्होंने
कृष्णसात्कृतप्राणैः—कृष्णमय अपना प्राण बना लिया है उनको तो सर्वथा चिन्ता करनी ही न चाहिये।

भावार्थः—अज्ञानसे अथवा ज्ञानसे जिन्होंने आत्मनिवेदन किया है, उन्हें चिन्ता करना उचित नहीं। पुनः श्रीकृष्णको जिन्होंने प्राण समर्पण किया है; उन्हें किस विषयका शोक है? ॥४॥

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थो हि हरिः स्वतः ।५।

पदच्छेदः—तथा, निवेदने, चिन्ता, त्याज्या, श्रीपुरु-

पोत्तमे । विनियोगे, अपि सा, त्याज्या, समर्थः, हि, हरिः, स्वतः ॥ ५ ॥

तथा—उसी प्रकार
श्रीपुरुषोत्तमे—श्रीपुरुषोत्तमको
निवेदने—निवेदन होने पर
चिन्ता, त्याज्या—चिन्ता त्याज्य है
सा, विनियोगे—वह अन्य-विनियोगमें
अपि, त्याज्या—भी त्याज्य है
हि, हरिः—क्योंकि श्रीकृष्ण
स्वतः, समर्थः—स्वयम् समर्थ हैं

भावार्थः—इस प्रकार श्रीपुरुषोत्तममें "निवेदन" और अन्य-के "विनियोग" के विषयमें चिन्ता छोड़ देनी चाहिये, क्योंकि प्रभु स्वतः सब कुछ समर्थ हैं ॥५॥

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणोभवताखिलाः॥६॥

पदच्छेदः—लोके, स्वास्थ्यम्, तथा, वेदे, हरिः, तु, न, करिष्यति । पुष्टिमार्गस्थितः, यस्मात्, साक्षिणः, भवता, अखिलाः ॥ ६ ॥

हरिः, तु—श्रीकृष्ण तो
लोके, तथा—लोकमें और
वेदे—वेदमें (पुष्टिमार्गीय जीवका)
स्वास्थ्यम्, न—स्वस्थता नहीं
करिष्यति—करेंगे
यस्मात्—क्योंकि (भगवान्)
पुष्टिमार्गस्थितः—पुष्टिमार्गमें स्थित हैं
अखिलाः—सब
भवता—आप लोग
साक्षिणः—साक्षी रूप हों ।

भावार्थः—पुष्टिमार्ग अर्थात् अनुग्रह मार्गमें स्थित श्रीभगवान् लोक और वेदमें स्वस्थता न करेंगे। इस विषयमें आप सब पुष्टिमार्गीयभक्त साक्षी रूप हैं ॥ ६ ॥

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया ।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम ॥७॥

पदच्छेदः—सेवाकृतिः, गुरोः, आज्ञा, बाधनम्, वा, हरीच्छया अतः, सेवापरम्, चित्तम्, विधाय, स्थीयताम्, सुखम् ॥७॥

गुरोः, आज्ञा—गुरुकी आज्ञानुसार
सेवाकृतिः—सेवा करना
वा—अथवा
हरीच्छया—श्रीहरिकी इच्छासे
बाधनम्—विशेषाज्ञा हो तो उसी प्रकार करना
अतः—इसलिये
सेवापरम्—सेवा परायण
चित्तम्—चित्तको
विधाय—करके
सुखम्—सुखपूर्वक
स्थीयताम्—रहो ।

भावार्थः—श्रीगुरुदेवकी आज्ञानुसार प्रभुकी सेवा करनी चाहिये। किसी समय प्रभुकी इच्छासे उसमें कोई प्रकारकी अड़चन आ पड़े और गुरुकी प्रथम आज्ञानुसार सेवा न बन सके तो कोई चिन्ताकी बात नहीं । वैष्णवको चाहिये कि चित्तको सेवा परायण रखकर सुख पूर्वक रहे ॥ ७ ॥

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति ।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत्॥८॥

पदच्छेदः—चित्तोद्वेगम्, विधाय, अपि, हरिः, यत्,

यत्, करिष्यति, तथा, एव, तस्य, लीला, इति, मत्वा, चिन्ताम्, द्रुतम्, त्यजेत् । ८ ॥

चित्तोद्वेगम्—चित्तमें उद्वेग
विधाय, अपि—करके भी
हरिः, यद्यत्—भगवान् जो जो
करिष्यति—करेंगे
तथैव—उसी प्रकार
तस्य—उन श्रीभगवानकी
लीला—लीला है ।
इति, मत्वा—इस प्रकार मानकर
चिन्ताम्, द्रुतम्—चिन्ताको शीघ्र
त्यजेत्—छोड़ दे ।

भावार्थः—श्रीप्रभुकी सेवा करते हुये किसी समय भगवान् चित्तमें उद्वेग कराकर जो-जो करेंगे, उनकी वैसी ही लीला अर्थात् खेल मानकर बहुत शीघ्र चिन्ताका त्याग करें ॥ ८ ॥

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं "श्रीकृष्णः शरणं मम" ।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ॥९॥

पदच्छेदः—तस्मात्, सर्वात्मना, नित्यम्, श्रीकृष्णः, शरणम्, मम । वदद्भिः, एव, सततम् स्थेयम्, इति, एव, मे, मतिः ॥ ९ ॥

तस्मात्—इसलिये
सर्वात्मना—सर्वात्मभावसे
श्रीकृष्णः—श्री कृष्ण
मम—मेरे लिये
शरणम्—आश्रय हैं ।
एवम्—"श्रीकृष्ण शरणं मम" ऐसे
सततम्—निरन्तर
वदद्भिः—बोलते हुये
स्थेयम्—रहना ।
इति, एव—इस प्रकार ही
मे—मेरी (श्रीवल्लभाचार्यकी)
मतिः—सम्मति है ।

भावार्थः—इसलिये सब प्रकार सदैव "श्रीकृष्णः शरणं मम" इस प्रकार उच्चारण करते रहना मेरी यह सम्मति है ॥ ६ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं नवरत्नं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

७—अन्तःकरणप्रबोधः

अंतःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु ।
कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्॥१॥

पदच्छेदः—अन्तःकरण मद्वाक्यम्, सावधानतया, शृणु । कृष्णात्, परम्, न, अस्ति, दैवम्, वस्तुतः, दोषवर्जितम् ॥१॥

अन्तःकरण !—हे अन्तःकरण !	परम्—दूसरा
मद्वाक्यम्—मेरे वचनको	वस्तुतः—वास्तवमें
सावधानतया—सावधानतापूर्वक	दोषवर्जितम्—दोष रहित
शृणु—सुन	दैवम्—देवता
कृष्णात्—श्रीकृष्णसे	न, अस्ति—नहीं है ।

भावार्थः—हे अन्तःकरण ! मेरे वाक्योंको सावधान होकर श्रवणकर, वस्तुतः दोष रहित "श्रीकृष्ण" से अन्य कोई भी देवता नहीं है ॥ १ ॥

चांडाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।
कदाचिदपमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत् ॥२॥

पदच्छेदः—चाण्डाली, चेत्, राजपत्नी, जाता, राज्ञा, च, मानिता । कदाचित्, अपमाने, अपि, मूलतः, का, क्षतिः, भवेत् ॥२॥

चाण्डाली—चाण्डालिन
चेत्, राजपत्नी-यदि राजाकी राणी
च, मानिता-और सम्माननीया
जाता—हुई
कदाचित्—कभी उसका
अपमाने—अपमान होनेपर
अपि, मूलतः—भी प्रथम की अपेक्षा (उसकी)
का क्षतिः—क्या हानि
भवेत्—होती है ।

भावार्थः—यदि कोई चाण्डाली राजपत्नी हुई और राजाने उसका विशेष सम्मना भी किया, और किसी समय राजाकी ओरसे उसे अपमानित किया गया, तो मूलसे उसे क्या हानि होती है । सारांश यह है कि राजाने जिसको एक बार रानी बना लिया है, उसका सम्मान न रहनेपर भी वह रानी मिटकर फिर चाण्डाली तो हो ही नहीं सकती ॥ २ ॥

समर्पणादहं पूर्वमुत्तमः किं सदा स्थितः ।
का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ॥३॥

पदच्छेदः—समर्पणात्, अहम्, पूर्वम्, उत्तमः, किम्, सदा, स्थितः । का, मम, अधमता, भाव्या, पश्चात्तापः, यतः, भवेत् ॥ ३ ॥

अहम्, समर्पणात्—मैं समर्पणसे
पूर्वम्, किम्—प्रथम क्या
सदा, उत्तमः—सदैव उत्तम
स्थितः—रहा था ।
मम, अधमता—मेरी अधमता
का, भाव्या—क्या विचारणीय है
यतः—जिस लिये
पश्चात्तापः—पश्चात्ताप
भवेत्—हो ।
विष्णुः—श्रीभगवान्

भावार्थः—समर्पण अर्थात् आत्मनिवेदनके पहिले क्या मैं सदा उत्तम रहा और अब मेरेमें कौनसी अधमता आगई है कि जिसके कारण मेरेको पश्चात्ताप हो ॥ ३ ॥

सत्यसङ्कल्पतो विष्णुर्नान्यथा तु करिष्यति ।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत्॥४॥

पदच्छेदः—सत्संकल्पतः, विष्णुः, न, अन्यथा तु, करिष्यति । आज्ञा, एव, कार्या, सततम्, स्वामिद्रोहः अन्यथा, भवेत् ॥ ४ ॥

सत्यसंकल्पतः—सत्य संकल्प वाले होनेके कारण
अन्यथा—अपनी इच्छाके विरुद्ध
न, करिष्यति—नहीं करेंगे
सततम्—सदैव
आज्ञा, एव—आज्ञाका पालन हो
कार्या—करना चाहिये
अन्यथा, स्वामिद्रोहः—नहीं तो स्वामीका द्रोह
भवेत्—होता है ।

भावार्थः—भगवान् विष्णु सत्य प्रतिज्ञा वाले हैं, वे अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत कभी भी नहीं करेंगे । हमें सदैव उनकी आज्ञाके अनुसार ही चलना चाहिये । यदि ऐसा न करें तक स्वामी द्रोह होगा ॥ ४ ॥

सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।
आज्ञा पूर्वं तु या जाता गङ्गासागरसङ्गमे॥५॥
यापि पश्चान् मधुवने न कृतं तद् द्वयं मया ।
देहदेशपरित्यागस्तृतीयो लोकगोचरः ॥ ६॥

पदच्छेदः—सेवकस्य, तु, धर्मः, अयम्, स्वामी, स्वस्य, करिष्यति। आज्ञा, पूर्वम्, तु, या, जाता, गङ्गा-सागर संगमे। या, अपि, पश्चात्, मधुबने, न, कृतम्, तत् द्वयम्, मया, देहदेशपरित्यागः तृतीयः, लोकगोचरः ॥५-६॥

सेवकस्यअयम्—सेवकका यह
तु,धर्म,स्वामी—तो धर्म है स्वामी
स्वस्य—अपना कर्तव्य पूर्ण
करिष्यति—करेंगे।
या, आज्ञा—जो आज्ञा
पूर्वम्—प्रथम
गंगासागरसंगमे—गंगासागरके संगमपर
जाता—हुई
या, मधुबने—जो आज्ञा मधुवनमें
अपि, तत्—भी हुई, उन
द्वयम्—दोनों आज्ञाओंका पालन
मया—मैंने
न, कृतम्—नहीं किया
देहदेशपरित्यागः—देह और देशका परित्याग तथा
तृतीयः—तीसरी
लोकगोचरः—लोक प्रसिद्ध है

भावार्थः—स्वामीकी आज्ञाके अनुसार चलना यह सेवकका धर्म है और वे अपने वचनका पालन स्वयं करेंगे। प्रथम गंगा-सागरके संगमपर जो आज्ञा हुई और फिर मधुवनमें जो आज्ञा हुई 'देह और देशके परित्याग के सम्बन्धमें' उस आज्ञा का पालन मैंने नहीं किया किन्तु तृतीय आज्ञाका पालन मैंने किया जो कि लोक प्रसिद्ध है ॥५-६॥

पाश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा।
लौकिक प्रभुवत् कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ॥
सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखीभव ॥७½॥

पदच्छेदः—पश्चात्तापः, कथम्, तत्र, सेवकः, अहम्, न, च, अन्यथा। लौकिकप्रभुवत्, कृष्णः, न, द्रष्टव्यः, कदाचन। सर्वम्, समर्पितम्, भक्त्या, कृतार्थः, असि, सुखी, भव ॥ ७½ ॥

तत्र—इन आज्ञाओंके विषयमें	कदाचन, न—कभी भी नहीं
पश्चात्तापः—पश्चात्ताप	द्रष्टव्यः—देखना चाहिये
कथम्—क्यों (करें)	भक्त्या—भक्तिपूर्वक
अहम्, सेवकः—मैं सेवक हूँ	सर्वम्—सब कुछ
च, अन्यथा—और कोई दूसरा	समर्पितम्—समर्पण किया है इसलिये
न—नहीं हूँ।	कृतार्थः, असि—तू कृतार्थ है अतएव
कृष्णः—कृष्णको	सुखी, भव—सुखी हो।
लौकिकप्रभुवत्—लौकिक स्वामीके समान	

भावार्थः—मैं तो सेवक हूँ, अतः स्वामीकी आज्ञाके विपरीत नहीं कर सकता हूं, फिर पाश्चात्ताप कैसा! क्योंकि लौकिक स्वामीके समान श्रीकृष्णको कभी भी नहीं देखना चाहिये। भक्तिके द्वारा सब समर्पण करके तुम कृतार्थ होगये अतः सुखसे रहो ॥ ७½ ॥

प्रौढ़ापि दुहिता यद्वत् स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ॥
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा ।
लोकवच्चेत् स्थितिर्मे स्यात् किं स्यादिति विचारय ९

पदच्छेदः—प्रौढ़ा, अपि, दुहिता, यद्वत्, स्नेहात्,

न, प्रेष्यते, वरे, तथा, देहें, न, कर्त्तव्यम्, वरः, तुष्यति, न, अन्यथा। लोकवत्, चेत्, स्थितिः, मे, स्यात्, किम्, स्यात्, इति, विचारय ॥ ६ ॥

यद्वत्—जिस प्रकार
प्रौढ़ा—युवावस्था सम्पन्न
अपि, दुहिता—भी पुत्री
स्नेहात्—स्नेहसे
वरे, न—वरके पास नहीं
प्रेष्यते—भेजी जाती है।
तथा—उसी प्रकार
देहे—देहमें (ममत्व)
न, कर्त्तव्यम्—नहीं करना चाहिये
अन्यथा—नहीं तो
वरः, न—वर नहीं
तुष्यति—प्रसन्न होगा
चेत्, लोकवत्—यदि लोकके समान
मे, स्थितिः—मेरी स्थिति
स्यात्, किम्—हो तो क्या
स्यात्—हो
इति—इस प्रकार
विचारय—विचार करें।

भावार्थः—जिस प्रकार माता, पिता प्रौढ़ावस्था सम्पन्न पुत्री को स्नेहवश उसके स्वामी (पति) के पास नहीं भेजते हैं, उसी प्रकार अपने शरीरमें ममता न करनी, अन्यथा अर्थात् सेवाके विना पति प्रसन्न नहीं होता है। यदि लोकके समान मेरी स्थिति रही तो क्या होगा, यह तो विचार करें ॥ ६ ॥

अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गाः कथञ्चन।
इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः ॥
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत्॥१०½

पदच्छेदः—अशक्ये, हरिः एव, अस्ति, मोहम्, मा,

गाः, कथञ्चन, इति, श्रीकृष्णदासस्य, वल्लभस्य, हितम्, वचः । चित्तम्, प्रति, यत्, आकर्ण्य, भक्तः, निश्चिन्तताम् व्रजेत् ॥ १०½ ॥

अशक्ये—अशक्य होनेपर
हरिः—श्रीकृष्ण
एव, अस्ति—ही शरण हैं । अतः
कथञ्चन—किसी प्रकार
मोहम्—मोहको
मा गाः—नहीं प्राप्त हो
इति—इस प्रकार
श्रीकृष्णदासस्य—श्रीकृष्णकेदास
वल्लभस्य—श्रीवल्लभाचार्यके
हितम् वचः—हितकर वाक्य,हैं
यत्, चित्तम्—जिनको हृदयके
प्रति, आकर्ण्य—प्रतिसुनकर
भक्तः—भक्त
निश्चिन्तताम्—निश्चिन्त भावको
व्रजेत्—प्राप्त हो ।

भावार्थः—असमर्थ अवस्थामें प्रभुही हमारी सहायता करेंगे। इसलिये हे अन्तःकरण ! तू मोहको प्राप्त मत हो । इस प्रकार श्रीकृष्णके दास श्रीवल्लभाचार्यजीने अपने चित्तको हितकारी बचन कहे हैं जिसकों सुनकर भक्त चिन्ता रहित बनें ॥ १०½ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचितोन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ॥ ७ ॥

८—विवेकधैर्याश्रयनिरूपणम्

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः ॥१॥
विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥१॥

पदच्छेदः—विवेकधैर्ये, सततम्, रक्षणीये, तथा, आश्रयः। विवेकः, तु, हरिः, सर्वम्, निजेच्छातः, करिष्यति ॥१॥

विवेकधैर्ये—विवेक और धैर्य
सततम्—सदैव
रक्षणीये—रक्षण योग्य हैं
तथा—उसी प्रकार
आश्रयः—आश्रय भी रक्षण करने योग्य है
विवेकः, तु—विवेक तो
हरिः, सर्वम्—भगवान् सब कुछ
निजेच्छातः—अपनी इच्छा से
करिष्यति—करेंगे।

भावार्थः—जिस प्रकार सदैव विवेक और धैर्य्य रखना उचित है उसी प्रकार श्रीभगवानका आश्रय रखना उचित है। अब विवेक क्या है, इस विषय पर श्रीमहाप्रभुजी स्पष्टीकरण करते हैं कि विवेक यह है कि श्रीहरि अपनी इच्छासे सब कुछ करेंगे ॥ १ ॥

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्रायशयात्।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ॥२॥

पदच्छेदः—प्रार्थिते, वा, ततः, किम्, स्यात्, स्वाम्यभिप्रायसशयात्। सर्वत्र, तस्य, सर्वम्, हि, सर्वसामर्थ्यम्, एव, च ॥ २ ॥

स्वाम्यभिप्रायसंशयात्—स्वामी के अभिप्राय में सन्देह होनेके कारण
वा,—अथवा
प्रार्थिते—प्रार्थना करनेपर
ततः, किम्—भी क्या
स्यात्, हि—होगा क्योंकि
तस्य, सर्वत्र—उनका सर्वत्र
सर्वम्—सब कुछ है
च—और उनमें
सर्वसामर्थ्यम्—सर्वसामर्थ्य
एव—है ही।

भावार्थः—स्वामीका अभिप्राय क्या है इस विषयमें सेवक अजान है, क्या कार्य्य किस आशयसे प्रभु करते कराते हैं। इस विषयको पूर्ण रूपमें जीव जब जान नहीं सकता। तब प्रार्थना करनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है। सर्वत्र सब कुछ उनका ही है और उनमें सब प्रकारसे सामर्थ्य है। सारांश यह है कि भगवदिच्छाको समझनेमें जीव असमर्थ है और प्रभु सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सेवकके हितके लिये सब कुछ करेंगे। पुष्टिमार्गीय भक्त प्रभुसे किसी बातके लिये कभी प्रार्थना न करें ॥ २ ॥

अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व भावनात्।
विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादन्तःकरणगोचरः ॥३॥
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात्।
आपद्गत्यादिकार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ॥४॥

पदच्छेदः—अभिमानः, च, सन्त्याज्यः, स्वाम्यधीनत्वभावनात्। विशेषतः, चेत्, आज्ञा, स्यात्, अन्तःकरणगोचरः ॥ तदा, विशेषगत्यादिः, भाव्यम्, भिन्नम्,

तु, देहिकात् । आपद्गत्यादिकार्येषु, हठः, त्याज्यः, च सर्वथा ॥४॥

स्वाम्याधीनत्वभावनात्—स्वामीकी अधीनताके विचारसे
अभिमानः, तु—अभिमान तो
सन्त्याज्यः—वासना सहित त्याग करना चाहिये ।
अन्तःकरणगोचरः—प्रभुअन्तःकरणगोचर हैं (इसलिये)
विशेषतः—विशेष रूप से
आज्ञा, चेत्—आज्ञा यदि
स्यात्, तदा—हो । तब
देहिकात्—देह सम्बन्धसे
भिन्नम्—भिन्न (भगवत्सम्बन्धी)
विशेषगत्यादिः—विशेष गति आदि की
भाव्यम्—भावना करनी चाहिये
आपद्गत्यादिकार्येषु—आपत् प्राप्ति आदि कार्य्यों में
हठः, सर्वथा—हठ सब प्रकार
त्याज्यः—त्याग करने योग्य है ।

भावार्थः—अपनेको स्वामीके अधीन मानकर सब प्रकारसे अभिमान त्याग करना उचित है । अलौकिक अर्थात् सेवा सम्बंधी विशेष आज्ञा अपने अन्तःकरण द्वारा प्रकट हो तब उसीके अनुसार आचरण करना उचित है । आपत्तिके अवसर पर तथा गमनादि कार्य्योंमें हठका सर्वदा त्याग करना उचित है ॥ ३-४ ॥

अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम् ।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यं तु विनिरूप्यते ॥५॥

पदच्छेदः—अनाग्रहः, च, सर्वत्र, धर्माधर्माग्रदर्शनम् । विवेकः, अयम्, समाख्यातः, धैर्यम्, तु, विनिरूप्यते ॥५॥

धर्माधर्माग्रदर्शनम्—धर्म और अधर्मकी विशेषता देखकर

सर्वत्र—सब विषयोंमें
अनाग्रहः—आग्रह न करना
च, अयम्—और यह
विवेकः—विवेक
समाख्यातः, तु—कहा अब
धैर्यम्—धैर्यका
निरूप्यते—निरूपण करते हैं

भावार्थः—समस्त विषयोंमें आग्रह नहीं रखकर, धर्म और अधर्म विषयक बिचार करना उचित है। अर्थात् प्रत्येक विषयमें धर्म और अधर्म इन उभयमेंसे किस कार्यमें धर्म अधिक है और किस कार्यमें अधर्म अधिक है यह देखकर धर्मका ग्रहण और अधर्मका त्याग करना। इस प्रकार मैंने विवेक विषयमें अपना मत कहा अब धैर्यका निरूपण करता हूं ॥ ५ ॥

त्रिदुःखसहनं धैर्यमामृतेः सवतः सदा ।
तक्रवद् देहवद् भाव्यं जडवत् गोपभार्यावत् ॥६॥

पदच्छेदः—त्रिदुःखसहनम्, धैर्यम्, आमृतेः, सर्वतः, सदा। तक्रवत्, देहवत्, भाव्यम्, जडवत्, गोपभार्यवत् ॥६।

आमृतेः—मरणपर्यन्त
सर्वतः—सब प्रकारसे
सदा—सदैव
त्रिदुःखसहनम्—त्रिविध दुःखोंको सहन करना यह
धैर्यम्—धैर्य है
तक्रवत्, देहवत्—आधिभौतिक (देह सम्बन्धी) दुःखोंमें छाछ की तरह
जडवत्—(इन्द्रिय सम्बन्धी) दुःखोंमें जडभरतकी तरह
गोपभार्यावत्—(आधिदैविक प्रतिबन्धोंमें) गोप वधूके सदृश
भाव्यम्—भावना करनी चाहिये

भावार्थः—सदैव मृत्यु पर्यन्त अर्थात् सम्पूर्ण जीवनमें

आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक तीनों प्रकारके दुखोंको सर्वविध सहन करना इसका नाम धैर्य्य है। तक्रके समान, देहके समान, जडके समान तथा गोपभार्याके समान भावना करनी ॥ ६ ॥

प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।
भार्यादीनां तथान्येषामसतश्चाक्रमं सहेत् ॥७॥

पदच्छेदः—प्रतीकारः, यदृच्छातः, सिद्धः, चेत्, न, आग्रही, भवेत् । भार्यादीनाम्, तथा, अन्येषाम्, असतः, च, आक्रमम्, सहेत् ॥ ७ ॥

प्रतीकारः—दुःखकी निवृत्तिका उपाय
यदृच्छातः—प्रभु इच्छासे
सिद्धः—सिद्ध
चेत्—होजाय तो
आग्रहः, न—आग्रही नहीं।
भवेत्—होना
भार्यादीनाम्—स्त्रिपुत्रादिकोंका
अन्येषाम्—दूसरों का
तथा—और
असतः—असत्पुरुषों का
आक्रमम्—अतिक्रम
सहेत्—सहन करना

भावार्थः—यदि श्रीप्रभुकी इच्छासे किंवा अन्य कारणोंसे दुःख निवारण होता हो तो दुःख भोगनेका आग्रह न रखे। पत्नि इत्यादिके अथवा दूसरे असत् पुरुषोंके आक्रमणोंको सहन करें। शारांश यह है कि अपने और पराये लोग अपने दुष्ट स्वभावके कारण वे हमें किसी प्रकारसे दुःख दें तो उसको सहन करें, अधीर न बनें ॥ ७ ॥

स्वयमिन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा त्यजेत् ।
अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्यभावनात् ॥८॥

पदच्छेदः—स्वयम्, इन्द्रियकार्याणि, कायवाङ्मनसा, त्यजेत् । अशूरेण, अपि, कर्त्तव्यम्, स्वस्य, असामर्थ्यभावनात् ॥ ८ ॥

स्वयम्—अपने आप

कायवाङ्मनसा—शरीर वाणी और मनके द्वारा

इन्द्रियकार्याणि—इन्द्रियोंके कार्यों को

त्यजेत्—त्याग करना

अशूरेण, अपि—असमर्थको भी

स्वस्य—अपनी

असामर्थ्यभावनात्—अपनी असक्तताका विचार करके उन कार्यों का त्याग

कर्तव्यम्—करना चाहिये ।

भावार्थः—स्वयं मन, बचन और कर्मसे इन्द्रियोंके विषयों का त्याग कर देना ही उचित है । अपना असामर्थ्य विचार कर भगवानके सामर्थ्य पर विचार कर विषय भोगका सवथा परित्याग करे । इन्द्रियोंको जीतनेके लिये जिस शौर्यकी आवश्यकता है वह सबमें नहीं रहती इसलिये ऐसे लोग भगवानका सामर्थ्य लेकर अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ ८ ॥

अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।
एतत् सहनमत्रोक्तमाश्रयोऽतो निरूप्यते ॥९॥

पदच्छेदः—अशक्ये, हरिः, एव, अस्ति, सर्वम्, आश्रयतः, भवेत् । एतत्, सहनम्, अत्र, उक्तम्, आश्रयः, अतः निरूप्यते ॥ ९ ॥

अशक्ये—अशक्य अवस्थामें
हरिः—भगवान्
एव—ही रक्षक हैं
सर्वम्—सब कुछ उनकी
आश्रयतः—भगवानके आश्रयसे
भवेत्—होता है।
अत्र, एतत्—यहाँ पर यह
सहनम्, उक्तम्—धैर्य कहा है
अतः—अब यहाँसे
आश्रयः—आश्रयका
निरूप्यते—निरूपण करते हैं।

भावार्थः—जिन कार्योंके करनेमें हम अशक्य अर्थात् सामर्थ्य रहित हैं उनमें श्रीहरि ही सहायक हैं। उनके आश्रयसे सब कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रकार यहाँ पर धैर्यके सम्बन्धमें मैंने निरूपण किया, अब आगे आश्रयके विषयका निरूपण करता हूँ ॥९

ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः।
दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ॥१०॥
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः॥११॥

पदच्छेदः—ऐहिके, पारलोके, च, सर्वत्र, शरणम्, हरिः। दुःखहानौ, तथा, पापे, भये, कामाद्यपूरणे॥ भक्त-द्रोहे, भक्त्यभावे, भक्तैः, च, अतिक्रमे, कृते, । अशक्ये, वा, सुशक्ये, वा सर्वथा, शरणम्, हरिः ॥१०-११॥

ऐहिके, च—इस लोकमें और
पारलोके—परलोक सम्बन्धी विषयोंमें
सर्वथा—सब प्रकारसे
हरिः—श्री प्रभुही (हमको)
शरणम्—आश्रय हैं।
दुःखहानौ—दुःखहानिमें
तथा, पापे, भये—पाप और भयमें

कामाद्यपूरणे——इच्छाओंकी अपूर्णतामें ।
भक्तद्रोहे——भक्तद्रोहमें
भक्त्यभावे——भक्तिके अभावमें
च, भक्तैः——और भक्तके द्वारा
अतिक्रमे——अतिक्रमण अनादर
कृते——करने पर
अशक्ये——अशक्य अवस्थामें
वा, सुशक्ये——अथवा समर्थ अवस्थामें
हरिः——श्रीकृष्ण
सर्वथा——सब प्रकार
शरणम्——आश्रय हैं ।

भावार्थः—इस लोकके और परलोकके सब कार्योंमें श्रीहरि का शरण (आश्रय) है । दुखनिवृति (हानि) में; पाप, भय और इच्छाओंकी असफलतामें भक्तद्रोह अथवा भक्तिके अभावमें भक्तोंके द्वारा अतिक्रमणसे अर्थात् दुःख प्राप्त होनेमें इस प्रकारकी अन्य शोचनीय अवस्थामें भगवानका आश्रय ही उचित है,

अहङ्कारकृते चैव पोष्यपोषणरक्षणे ।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे ॥१२॥
अलौकिकमनःसिद्धौ सर्वार्थे शरणं हरिः ।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ॥१३॥

पदच्छेदः—अहङ्कारकृते, च, एव, पोष्यपोषणरक्षणे । पोष्यातिक्रमणे, च, एव, तथा, अन्तेवास्यतिक्रमे । अलौकिकमनःसिद्धौ, सर्वार्थे, शरणम्, हरिः । एवम्, चित्ते, सदा, भाव्यम्, वाचा, च, परिकीर्तयेत् ॥ १२–१३ ॥

अहङ्कारकृते—अहंकार होनेपर | **च, एव**—और ही

पोष्यपोषणरक्षणे—पोष्यवर्गके पोषण तथा रक्षणमें
पोष्यातिक्रमणे—पोष्यजनोंके द्वारा अनादर होने पर
च, एव—और ही
तथा—इसी प्रकार
अन्तेवास्यतिक्रमे—शिष्य वर्गके द्वारा अनादर होने पर
अलौकिकमनःसिद्धौ—अलौकिक मनकी सिद्धिमें और
सर्वार्थे—समस्त अर्थों में
हरिः—श्रीभगवान्
शरणम्—आश्रय रूप है
एवम्—इस प्रकार
चित्ते, सदा—चित्त में सदैव
भाव्यम्—विचार करना
च, वाचा—और वाणी द्वारा
परिकीर्तयेत्—कथन करें।

भावार्थः—अहंकार हो जाय, अथवा पोष्य वर्गका भरण पोषण और रक्षण करनेके लिये, वा पोष्य वर्ग दुःख दें, वा सेवक आदि दुख दें अलौकिक मनकी सिद्धिमें अर्थात् मानसी सेवा-सिद्धिमें इस प्रकार सब कामोंके लिये हरिकी ही शरणमें जाना चाहिये। इस प्रकार सदैव चित्तमें विचारते रहना चाहिये और मुखसे अष्टाक्षर मन्त्र जपते रहना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेव च।
प्रार्थनाकार्यमात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥१४॥

पदच्छेदः—अन्यस्य, भजनम्, तत्र, स्वतः, गमनम्, एव, च। प्रार्थनाकार्यमात्रे, अपि, ततः, अन्यत्र, विवर्जयेत्॥१४॥

अन्यस्य—श्रीभगवानके बिना दूसरेका
भजनम्—सेवन।
च, तत्र—और वहाँ
स्वतः—अपने आप
गमनम्—गमन करना

प्रार्थनाकार्यं मात्रे—अन्यान्य देवताओंकी केवल प्रार्थनामें
अपि, ततः—भी वह
अन्यत्र—भगवानके अतिरिक्त दूसरे का
विवर्जयेत्—सर्वथा त्याग करें ।

भावार्थः—दूसरे देवताओंका भजन, और स्वयं वहाँ पर जाना, और कोई भी कार्यके लिये उससे प्रार्थना करना, इन तीनों बातोंको त्याग देना चाहिये ॥ १४ ॥

अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्ममः ॥१५॥

पदच्छेदः—अविश्वासः, न, कर्तव्यः, सर्वथा, बाधकः, तु, सः । ब्रह्मास्त्रचातकौ, भाव्यौ, प्राप्तम्, सेवेत, निर्ममः ॥१५॥

अविश्वासः—अविश्वास
न, कर्त्तव्यः—नहीं करना चाहिये
सः, तु—वह तो
सर्वथा, बाधकः—सब प्रकार बाधक है
ब्रह्मास्त्रचातकौ—ब्रह्मास्त्र और चातक
भाव्यौ—भावना करने योग्य है
निर्ममः—ममता रहित होकर
प्राप्तम्—प्राप्त वस्तु को
सेवेत—सेवन करे (भोगे)

भावार्थः—अविश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह निश्चय बाधक ही है, जैसे मेघनादने हनुमानजीको ब्रह्मास्त्रसे बाँधा था; तब वे बँध गये परंन्तु रावणको उसपर अविश्वास होनेके कारण हनुमानजीको लोहेकी मोटी जंजीरसे बाँधा तब ब्रह्मास्त्रने अपना गुण छोड़ दिया और हनुमानजीने उस मोटी जंजीरको भी तोड़ डाला । और विश्वास रखनेके कारण चातक पक्षीको, मेघ जड़ होने पर भी स्वाती नक्षत्रमें वर्षा करके जल देताही है । इस तरह ब्रह्मास्त्र और चातक पक्षीके दृष्टांतको स्मरण रखते हुए

जो कुछ प्राप्त हो उसे ममतारहित होकर सेवन करे ॥ १५ ॥

यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।
किं वा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् ॥ १६ ॥

पदच्छेद :—यथाकथञ्चित्, कार्याणि, कुर्यात्, उच्चावचानि, अपि । किम्, वा, प्रोक्तेन, बहुना, शरणम्, भावयेत्, हरिम् ॥ १६ ॥

उच्चावचानि—उत्तम और कनिष्ठ
अपि यथाकथञ्चित्—भी जैसे तैसे
कुर्यात्—करे
वा, बहुना—अथवा बहुत प्रकारसे
प्रोक्तेन—कथनसे
किम्—क्या प्रयोजन है ?
हरिम्—श्री हरिको
शरणम्—आश्रय रूपमें
भावयेत्—चिन्तन करें

भावार्थः—जैसे बने वैसे लौकिक वैदिक तथा अन्य कार्य भी करता रहे विशेष कहनेकी क्या आवश्यकता है ? हरिकी शरणमें रहे ॥ १६ ॥

एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।
कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या इति मे मतिः १७

पदच्छेद :—एवम्, आश्रयणम्, प्रोक्तम्, सर्वेषाम्, सर्वदा, हितम् । कलौ, भक्त्यादिमार्गाः, हि, दुःसाध्याः, इति, मे, मतिः ॥ १७ ॥

एवम्—इस प्रकार
आश्रयणम्—आश्रय
प्रोक्तम्—निरूपण कर कहा
कलौ—कलियुगमें

भक्त्यादिमार्गाः—उपासनादि मर्यादा मार्ग
दुःसाध्याः—कठिन साधने योग्य हैं
इति—यह
मे—मेरी (श्रीवल्लभाचार्य) की
मतिः—सम्मति है ।

भावार्थः—इस प्रकार सदैव सबका हित करनेवाला आश्रय का स्वरूप मैंने कहा । इन तीनों के विना कलियुगमें भक्ति आदि मार्ग सिद्ध होना बहुत कठिन है ऐसी मेरी सम्मति है ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं विवेकधैर्याश्रयनिरूपणं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

१—श्रीकृष्णाश्रयः

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि ।
पाखण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥ १ ॥

पदच्छेदः—सर्वमार्गेषु, नष्टेषु, कलौ, च, खलधर्मिणि ।
पाखण्डप्रचुरे, लोके, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥ १ ॥

खलधर्मिणि—खलधर्म प्रधान
कलौ—कलियुगमें
सर्वमार्गेषु—उद्धारके सब मार्ग
नष्टेषु—नष्ट होनेसे
च, लोके—और लोक समुदायमें
पाखण्डप्रचुरे — पाखण्डकी अधिकता होनेपर
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं ।

भावार्थः—दुष्ट धर्मवाले इस कलिकालमें मनोवाञ्छित फल प्राप्तिके साधन, कर्म, ज्ञान, उपासना आदि सब मार्ग लुप्त हो चुके हैं और लोक अत्यन्त पाखण्डी हो गये हैं । इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ १ ॥

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च ।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥२॥

पदच्छेदः—म्लेच्छाक्रान्तेषु, देशेषु, पापैकनिलयेषु, च। सत्पीडाव्यग्रलोकेषु, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥२॥

देशेषु—देशके
म्लेच्छाक्रान्तेषु—म्लेच्छोंके द्वारा आक्रान्त होनेके कारण
च—और
पापैकनिलयेषु—केवल पापका स्थान बन जाने पर
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु—सत्पुरुषों के पीड़ित होनेके कारण लोकसमुदायके व्यग्र होने की दशामें
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं।

भावार्थ—कुरुक्षेत्र गङ्गातट आदि सब पवित्र देश म्लेच्छ पुरुषों से व्याप्त हो गये हैं तथा एक मात्र पापके स्थान बन गये हैं और सज्जनों की पीड़ाको देखकर लोग अधीर हो रहे हैं। इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ २ ॥

गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह ।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥३॥

पदच्छेदः—गंगातीर्थवर्येषु, दुष्टैः, एव, आवृतेषु, इह। तिरोहिताधिदैवेषु, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥३॥

इह—इस लोकमें
गंगादितीर्थवर्येषु—गंगादि उत्तम तीर्थ
दुष्टैः, एव—दुष्टोंके द्वारा ही
आवृतेषु—आवृत होनेपर
तिरोहिताधिदैवेषु—इन तीर्थों का आधिदैविक स्वरूप सामर्थ्य तिरोहित होनेपर
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं।

भावार्थः—इस कलियुगमें दुष्ट पुरुषोंसे घिरे हुए गङ्गादि मुख्य तीर्थोंके अधिष्ठाता देवता तिरोहित हो (छिप) गये हैं, इस कारण ही उनसे यथार्थ फलकी प्राप्ति नहीं होती है। इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ ३ ॥

अहङ्कारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु ।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥४॥

पदच्छेदः—अहंकारविमूढेषु, सत्सु, पापानुवर्तिषु, लाभपूजार्थयत्नेषु, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥४॥

सत्सु—सत्पुरुषोंके

अहंकारविमूढेषु—अहंकारसे विमूढ़ हो जानेपर और

पापानुवर्तिषु—पापी पुरुषोंके अनुकरण परायण हो जाने पर एवं

लाभपूजार्थयत्नेषु—लाभ तथा पूजाके निमित्त प्रयत्नशील होजानेकी अवस्थामें

कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही

मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं।

भावार्थः—सज्जन पुरुष भी अभिमानसे भ्रान्त हो रहे हैं, स्वार्थसिद्धिके लिये पापका अनुसरण तथा प्रतिष्ठाके लिये प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ ४ ॥

अपरिज्ञाननष्टेषु मन्त्रेष्वव्रतयोगिषु ।
तिरोहितार्थदेवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥५॥

पदच्छेदः—अपरिज्ञाननष्टेषु, मन्त्रेषु, अव्रतयोगिषु, तिरोहितार्थदेवेषु, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥५॥

मन्त्रेषु—मन्त्रोंके

अपरिज्ञाननष्टेषु—परिज्ञान न होनेसे नष्ट हो जानेके कारण

अव्रतयोगिषु—योगियोंके व्रत-हीन होनेपर

तिरोहितार्थदेवेषु—मन्त्रोंके अर्थ तथा देवताओंके तिरोहित हो जानेके अवसर पर

कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही

मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं।

भावार्थः—गुरुसेवा न बननेके कारण पाठ, अर्थ और विनियोग आदिके अज्ञानसे वैदिक तथा अन्य मन्त्रोंका नाश हो गया है, तथा ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंसे हीन पुरुषोंके पास रहनेसे उन मन्त्रोंके अर्थ और अधिष्ठाता देवता तिरोहित हो (छिप) गये हैं। इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं॥ ५॥

नानावादविनष्टेषु सर्व कर्मव्रतादिषु।
पाखण्डैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥६॥

पदच्छेदः—नानावादविनष्टेषु, सर्वकर्मव्रतादिषु।
पाखण्डैकप्रयत्नेषु, कृष्णः, एव, गतिः, मम॥६॥

सर्वकर्मव्रतादिषु—सर्व कर्म एवं व्रतादि

नानावादविनष्टेषु—विविध विवाद के कारण नष्ट होने से और

पाखण्डैकप्रयत्नेषु—पाखण्ड के निमित्त ही प्रयत्न बढ़ जाने पर

कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही

मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं

भावार्थः—शास्त्र विरुद्ध अनेक प्रकारके विवादोंसे वेदोक्त सम्पूर्ण कर्म, व्रत आदिका नाश हो गया और लोग केवल

पाखण्ड दिखानेके लिये ही प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिये श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥ ६ ॥

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम ॥७॥

पदच्छेदः—अजामिलादिदोषाणाम्, नाशकः, अनुभवे, स्थितः, ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥७॥

अजामिलादिदोषाणाम्—अजामिलादि पापियोंके दोषोंका
नाशकः—नाश करनेवाले हरि
अनुभवे—अनुभवमें
स्थितः—स्थित है
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः—प्रगट किया है समग्र माहात्म्य जिन्होंने ऐसे
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं

भावार्थ—नाम ग्रहण मात्रसे अजामिल आदि दुष्ट जीवोंके महापापों का नाश करनेवाले आप दोषोंके नाश करनेवाले हैं, इस रूपसे भक्तोंके अनुभवमें आनेवाले और दैवी जीवोंको अपने सम्पूर्ण माहात्म्यका ज्ञान करानेवाले श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं ॥७॥

प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दकं बृहत्।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्ण एव गतिर्मम ॥८॥

पदच्छेद—प्राकृताः, सकलाः, देवाः, गणितानन्दकम्, बृहत्। पूर्णानन्दः, हरिः, तस्मात्, कृष्णः, एव गतिः, मम, ॥ ८ ॥

सकलाः—समस्त
देवाः—देवगण
प्राकृताः—प्राकृत हैं
बृहत्—अक्षर ब्रह्म
गणितानन्दकम्—गणना होसके इस प्रकार अल्प आनन्द यक्त है।
हरिः, पूर्णानन्दः— श्रीकृष्ण पूर्ण आनन्दमय हैं।
तस्मात्—इसलिये
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं

भावार्थः—ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता भगवानकी शक्ति मायाके वशीभूत हैं और अक्षर ब्रह्मके आनन्दकी भी अवधि है। इसलिये अगणित आनन्द वाले और भक्तोंके सब दुःख दूर करनेवाले श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षक हैं॥ ८॥

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः।
पापासक्तस्य, दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम ॥९॥

पदच्छेदः—**विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य, विशेषतः। पापासक्तस्य, दीनस्य, कृष्णः, एव, गतिः, मम ॥९॥**

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य—विवेक, धैर्य और नवधाभक्ति आदि से रहित
विशेषतः—अधिकतर
पापासक्तस्य—पापमें आसक्त
दीनस्य—दीन पुरुषोंको
कृष्णः, एव—श्रीकृष्ण ही
मम, गतिः—मेरे लिये आश्रय हैं

भावार्थः—विवेक, धैर्य, भक्ति आदि भगवानके धर्मोंसे रहित, पापोंमें अत्यन्त आसक्त तथा अत्यन्त दीन ऐसे मेरे लिये श्रीकृष्ण ही रक्षक हैं॥ ९॥

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत्।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् ॥१०॥

पदच्छेदः—सर्वसामर्थ्यसहितः, सर्वत्र, एव, अखिलार्थकृत। शरणस्थसमुद्धारम्, कृष्णम्, विज्ञापयामि, अहम्॥१०॥

सर्वसामर्थ्यसहित—सब प्रकारके सामर्थ्यसे युक्त
सर्वत्र, एव—सब स्थानोंमें ही
अखिलार्थकृत्—सम्पूर्ण अर्थों को सिद्ध करनेवाले तथा
शरणस्थसमुद्धारम्—शरणमें स्थिति करनेवाले जीवकी अच्छी तरह से उद्धार करनेवाले
कृष्णम्—श्रीकृष्णको
अहम्—मैं (श्रीवल्लभाचार्यजी)
विज्ञापयामि-निवेदन करता हूँ।

भावार्थ—हे कृष्ण ! आप सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त हैं, और सब अवस्थाओंमें भक्तोंके सारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले। इसलिये शरणमें आये हुये भक्तका उद्धार करनेवाले प्रभो ! आपकी प्रार्थना करता हूँ॥१०॥

कृष्णाश्रयमिदंस्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसन्निधौ।
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ११

पदच्छेदः—कृष्णाश्रयम्, इदम्, स्तोत्रम, यः, पठेत्, कृष्णसन्निधौ। तस्य, आश्रयः, भवेत्, कृष्णः, इति, श्रीवल्लभः, अब्रवीत्॥११॥

इदम्—यह
कृष्णाश्रयम्—कृष्णाश्रयनामक
स्तोत्रम्—स्तुति ग्रन्थ
य—जो कोई
कृष्णसन्निधौ—श्रीकृष्णके समीपमें
पठेत्—पाठ करें।
तस्य, कृष्णे-उसका श्रीकृष्णमें
आश्रय—आश्रय
भवेत्, इति—हो इस प्रकार
श्रीवल्लभः—श्रीवल्लभाचार्यजी
अब्रवीत्—आज्ञा करते हैं

भावार्थः—जो भगवान् श्रीकृष्णके समीप इस कृष्णाश्रय स्तोत्रका पाठ करता है उस मनुष्यके श्रीकृष्ण स्वयं आश्रय हो जाते हैं। यह श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभुने आज्ञा की है। भगवानके आश्रय हो जानेमें श्रीवल्लभाचार्यजीके वचनोंकी वस्तुशक्ति ही कारण है; क्योंकि श्रीआचार्यचरणोंके वचनोंसे प्रेरित होकर ही भगवान् किसी साधनकी अपेक्षा न रखकर भक्तके आश्रयरूप होते हैं॥ ११॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥ ९॥

१०—चतुःश्लोकी

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन॥१॥

पदच्छेदः—सर्वदा, सर्वभावेन, भजनीयः, व्रजाधिपः। स्वस्य, अयम्, एव, धर्मः, हि, न, अन्यः, क्व, अपि, कदाचन॥१॥

सर्वदा—सदैव
सर्वभावेन—सर्व भाव द्वारा
व्रजाधिपः—व्रजके अधिपति श्रीकृष्ण
भजनीयः—भजन करने योग्य हैं
स्वस्य, अयम्—अपना यही
एव, हि—निश्चय ही
धर्मः—धर्म है
क्वापि—कहीं पर भी
कदाचन—कभी भी
अन्यः—दूसरा धर्म नहीं है।

भावार्थः—सदैव सर्वभावसे श्रीव्रजाधिप श्रीकृष्ण भजने योग्य हैं। अपना (जीवात्माका) यही धर्म है। किसी देशमें

और किसी कालमें श्रीकृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं है ॥ १ ॥

एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।
प्रभुः सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥ २॥

पदच्छेदः—एवम्, सदा, स्म कर्त्तव्यम्, स्वयम्, एव, करिष्यति । प्रभुः, सर्वसमर्थः, हि, ततः, निश्चिन्तताम् व्रजेत् ॥२॥

एवम्, सदा—इस प्रकार सदैव
कर्त्तव्यम्—करना चाहिये और
स्वयमेव—भगवान् आप ही भक्तके कार्यको
करिष्यति—करेंगे ।
हि, प्रभुः—निश्चय प्रभु
सर्वसमर्थः—सब कुछ करनेको समर्थ हैं
ततः—इसलिये
निश्चिन्तताम्—निश्चिन्त भावको
व्रजेत्—प्राप्त हो ।

भावार्थः—इस प्रकार सदैव सेवारूप स्वधर्मका पालन करना चाहिये और प्रभु स्वयं अपना कर्तव्य पूर्ण करेंगे । श्रीप्रभु सब कुछ करनेको समर्थ हैं यह समझकर भक्त निश्चिन्त रहें, मूलमें 'स्म' शब्द सिद्धार्थक है ॥ २ ॥

यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि ।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥ ३॥

पदच्छेदः—यदि श्रीगोकुलाधीशः धृतः, सर्वात्मना, हृदि । ततः, किम्, अपरम्, ब्रूहि, लौकिकैः, वैदिकैः, अपि ॥३॥

यदि—यदि
श्रीगोकुलाधीशः—श्रीगोकुलके अधीश्वर श्रीकृष्णको
सर्वात्मना—सब प्रकारसे
हृदि—हृदयमें
धृतः—धारण किया
ततः—पश्चात्
लौकिकैः—लौकिक कर्मोंसे और
वैदिकैः—वैदिक कर्मोंसे
किम्—क्या प्रयोजन है, हे मन वह
ब्रूहि—कहे

भावार्थः—यदि श्रीगोकुलके अधिपति श्रीकृष्णको सम्पूर्ण रूपमें सब प्रकारसे अपने हृदयमें धारण कर लिया है तो फिर लौकिक और वैदिक फलोंसे क्या प्रयोजन है ? हे मन ! वह तुम मुझे कहो ॥ ३ ॥

अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः ।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ॥४॥

पदच्छेदः—**अतः, सर्वात्मना, शश्वत्, गोकुलेश्वरपादयोः। स्मरणम्, भजनम्, च, अपि, न, त्याज्यम्, इति, मे, मतिः ॥४॥**

अतः—अतएव
सर्वात्मना—सब प्रकार से
शश्वत्—निरन्तर
गोकुलेश्वरपादयोः—श्री गोकुलेशके चरण कमलका
स्मरणम्, च—स्मरण और
भजनम्, अपि—सेवा भी
त्याज्यम्—त्याग करने योग्य
न, इति—नहीं है इस प्रकार
मे, मतिः—मेरी 'श्रीमद्वल्लभाचार्यकी) सम्मति है ।

भावार्थः—अतएव सब प्रकारसे सदैव श्रीगोकुलेशके

चरणकमलका स्मरण और भजन त्याग करने योग्य नहीं है इस प्रकारकी मेरी सम्मति है ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी सम्पूर्णा ॥१०॥

११—भक्तिवर्धिनी

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते ।
बीजभावे दृढ़े तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् ॥ १॥

पदच्छेदः—यथा, भक्तिः, प्रवृद्धा, स्यात्, तथा, उपायः, निरूप्यते । बीजभावे, दृढ़े, तु, स्यात्, त्यागात्, श्रवण-कीर्तनात् ॥१॥

यथा, भक्तिः—जिस प्रकार भक्ति
प्रवृद्धा, स्यात्—वृद्धिको प्राप्त हो
तथा—उस प्रकार
उपायः—उपाय
निरूप्यते—निरूपण करते हैं
बीजभावे—बीज भावके
दृढ़े, तु, स्यात्—दृढ़ होने पर ता वह होती है एवं
त्यागात्—त्यागसे तथा
श्रवणकीर्तनात्—श्रवणकीर्तनसे भी होती है

भावार्थः—जिस प्रकार भक्तिकी वृद्धि हो उस प्रकारका उपाय निरूपण किया जाता है, बीजभावके दृढ़ होने पर ही भक्तिकी वृद्धि होती है, साथ ही त्यागपूर्वक श्रीभगवानकी कथाओंके श्रवण तथा कीर्तनसे भक्तिकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥

बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।
अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः २

पदच्छेदः—बीजदाढर्य्यप्रकारः, तु, गृहे, स्थित्वा, स्वधर्मतः अव्यावृतः, भजेत्, कृष्णम्, पूजया, श्रवणादिभिः ॥ २ ॥

बीजदाढर्य्यप्रकारः, तु—बीज भावकी दृढ़ताका प्रकार तो यह है कि

गृहे, स्थित्वा—घरमें रहकर

स्वधर्मतः—स्वधर्मसे

अव्यावृतः—व्यावृत्तिरहित होकर

पूजया, श्रवणादिभिः—स्वरूप सेवा तथा श्रवणादि द्वारा

कृष्णं भजेत्—श्रीकृष्णको भजे

भावार्थः—बीजकी दृढ़ताका प्रकार इस रीतिसे है, स्वधर्म पालन पूर्वक घरमें रहकर सब व्यवसाय मात्रका त्याग कर भगवत् सेवा श्रवणादि द्वारा श्रीकृष्णका भजन करे ॥ २ ॥

व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा ।
ततः प्रेम तथासक्तिर्व्यसनं च यदा भवेत् ॥३॥

पदच्छेदः—व्यावृतः, अपि, हरौ, चित्तम्, श्रवणादौ, यतेत्, सदा । ततः, प्रेम, तथा, आसक्तिः, व्यसनम्, च, यदा, भवेत् ॥३॥

व्यावृतः, अपि—व्यावृत्ति करनेमें भी

हरौ—श्रीहरिमें

चित्तं—चित्त रखें और

सदा—सदैव

श्रवणादौ—श्रवणादिमें

यतेत्—यत्नशील रहें

ततः, प्रेम—उससे प्रेम

तथा—उसी प्रकार

आसक्तिः—आसक्ति

च, यदा—और जब

व्यसनं, भवेत्—व्यसनहोता है

भावार्थः—यदि गृहस्थाश्रमके अङ्गमें व्यवसाय करना पड़ेतो उसे करते हुए भगवानमें चित्त रखें तथा सदैव श्रवणादि भक्तिमें प्रयत्नशील बना रहे। जिससे प्रभुमें प्रेम, आसक्ति और व्यसन होंगे ॥ ३ ॥

बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति ।
स्नेहाद् रागविनाशः स्यादासक्त्या स्याद् गृहारुचिः ४

पदच्छेदः—बीजम्, तत्, उच्यते, शास्त्रे, दृढम्, यत्, न, अपि, नश्यति । स्नेहात्, रागविनाशः, स्यात्, आसक्त्या, स्यात्, गृहारुचिः ॥४॥

शास्त्रे, तत्—शास्त्रमें वह
दृढम्, बीजम्—दृढ़ बीज
उच्यते कहा है
यच्च, अपि—जो भी
न, नश्यति—नहीं नष्ट होता
स्नेहात्—स्नेहसे
रागः, विनाशः—रागका विनाश
आसक्त्या—आसक्तिसे
गृहारुचिः—घरमेंसे अरुचि
स्यात्—होती है

भावार्थः—शास्त्रमें उस बीजको दृढ़ कहते हैं जो किसी कारणसे नष्ट नहीं होता है। प्रभुमें स्नेह करनेसे सांसारिक रागोंकी निवृत्ति होती है तथा प्रभुमें आसक्ति होने पर घरसे अरुचि हो जाती है ॥ ४ ॥

गृहस्थानां बाधकत्वमानात्मत्वं च भासते ।
यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि ५

पदच्छेदः—गृहस्थानाम्, बाधकत्वम्, अनात्मत्वम्, च

भासते । यदा, स्यात्, व्यसनम्, कृष्णे, कृतार्थः, स्यात् । तदा, एव, हि ॥५॥

गृहस्थानां—घरमें रहने वालोंमें	व्यसनम्—व्यसन
बाधकत्वम्, च—बाधकता और	स्यात्—होता है तब
अनात्मत्वम्—अनात्मता	हि—निश्चय
भासते—प्रतीत होती है	तदा, एव—उसी समय जीव
यदा—जब	कृतार्थः—कृतार्थ
कृष्णे—श्रीकृष्णमें	स्यात्—होता है

भावार्थः—इस अवस्थामें घरमें रहनेवालोंकी बाधकता तथा अनात्मता विदित होती है, जिस समय श्रीकृष्णमें व्यसन हो जाता है, उसी समय वह जीव कृतार्थ हो जाता है ॥ ५ ॥

तादृशस्यापि सततं गृहस्थानं विनाशकम् ।
त्यागं कृत्वा यतेद्यस्तु तदर्थार्थैकमानसः ॥६॥
लभते सुदृढां भक्तिं सर्वतोप्यधिकां पराम् ।

पदच्छेदः-तादृशस्य, अपि, सततम्, गृहस्थानम्, विनाशकम् । त्यागम्, कृत्वा, यतेत्, यः, तु, तदर्थार्थैकमानसः ॥ लभते, सुदृढ़ाम्, भक्तिम्, सर्वतः, अपि, अधिकाम्, पराम्, ६½

तादृशस्य अपि—ऐसे भक्तको भी	या, तु—जो कोई भक्त
सततम्—सदैव	तदर्थार्थैकमानसः—केवल श्री-
गृहस्थानम्—घरमें रहना	भगवानकी प्राप्तिके निमित्त
विनाशकम्-भक्तिका विनाशक है	जिनका मन लगा हुआ है

त्यागम् कृत्वा—त्याग करके
यतेत्—भगवानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है
सर्वतः, अपि—सबसे
अधिकाम्—अधिक
दृढ़ाम्—अत्यंत दृढ़
पराम्—परम
भक्तिम्—भक्तिको
लभते—प्राप्त करता है

भावथः—ऐसे व्यसनावस्थावाले भक्तको घरमें सदैव रहना बाधक है। अतएव जो भक्त घरको त्यागकर केवल भगवत् प्राप्ति निमित्त एकाग्रचित्त होकर प्रयत्नशील रहता है वह भक्त सबसे अधिक और दृढ़ भक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६½ ॥

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात् तथान्नतः ॥७॥
अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति ॥८॥

पदच्छेदः—त्यागे, बाधकभूयस्त्वम्, दुःसंसर्गात्, तथा, अन्नतः। अतः स्थेयम्, हरिस्थाने, तदीयैः सह, तत्परैः। अदूरे, विप्रकर्षे, वा, यथा, चित्तम्, न, दुष्यति ॥८॥

त्यागे—त्यागमें
दुःसंसर्गात्—दुःसंगसे
तथा—उसी प्रकार
अन्नतः—अन्नदोषसे
बाधकभूयस्त्वम्—अधिक बाधकता होती है
अतः—अतएव
तदीयैः, सह—भगवदीयोंके संगमें

हरिस्थाने—भगवद् स्थलोंमें
तत्परैः—भगवत्पर.यण होकर
यथा—जिस प्रकार
चित्तम्—चित्त
न, दुष्यति—दूषित न हो उस प्रकार
अदूरे—समीप में
वा, विप्रकर्षे—अथवा दूरमें
स्थेयम्—रहना

भावार्थः—अब घरके त्याग करने पर भी अनेक प्रकारकी बाधकता है; क्योंकि अन्यत्र भी दु:संग और अन्नदोष भक्ति में प्रतिबन्धक होते हैं। अतएव भगवदीयजनोंके साथ भगवत् परायण होकर श्रीभगवत् स्थानमें निवास करना चाहिये। भगवन्मन्दिरके तथा भगवदियोंके समीपमें अथवा दूरमें इस प्रकार रहना जिस प्रकार चित्त दूषित न हो ॥ ८ ॥

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत् ।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ॥९॥

पदच्छेदः—सेवायाम्, वा, कथायाम्, वा, यस्य, आसक्तिः दृढा, भवेत् । यावज्जीवम्, तस्य, नाशः, न, क्व, अपि, इति मतिः मम । ९॥

यावज्जीवम्—जीवन-पर्यन्त
सेवायाम्, वा—सेवामें अथवा
कथायाम्—कथामें
यस्य—जिसकी
दृढासक्तिः—दृढ आसक्ति
भवेत्—होती है
तस्य—उस भक्तका
क्व, अपि—कहीं पर भी
नाशः, न—नाश नहीं होता है
इति—इस प्रकार
मम, मतिः—मेरी सम्मति है

भावार्थः—भगवत् सेवामें अथवा भगवत् कथामें जिनकी जीवन पर्यन्त दृढ़ासक्ति रहती है उनका कहीं पर भी नाश नहीं होता इस प्रकार मेरी सम्मति है ॥ ९ ॥

बाधसम्भावनायां तु नैकान्ते वास इष्यते ।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ॥१०॥

पदच्छेदः—बाधसम्भावनायाम्, तु, न, एकान्ते, वासः इष्यते । हरिः, तु, सर्वतः रक्षाम्, करिष्यति, न, संशयः ॥१०॥

बाधसम्भावनायाम्— भक्तिमें अड़चन होने की संभावना होने पर	**हरि, तुः**—भगवान् तो
तु, वासः—तो एकान्तमें निवास	**सर्वतः**—सब ओर से
न, इष्यते—इच्छित नहीं है	**रक्षाम्** - रक्षा
	करिष्यति—करेंगे
	न, संशयः—इसमें सन्देह नहीं

भावार्थः—प्रभुकी भक्ति करनेमें यदि किसी प्रकारकी बाधा होनेकी सम्भावना हो तो भक्तिके लिये एकान्त वास श्रेष्ट नहीं है, हरि तो भक्तिकी सब प्रकारसे रक्षा करेंगे । इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १० ॥

इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम् ।
य एतत् समधीयीत तस्यापि स्याद् दृढा रतिः ११

पदच्छेदः—इति, एवम्, भगवच्छास्त्रम्, गूढतत्वम्, निरूपितम् । यः एतत्, समधीयीत, तस्य, अपि, स्यात्, दृढा, रतिः ।

इति, एवम्—इस प्रकार
गूढतत्वम्—जिसका गुप्त रहस्य है
भगवच्छास्त्रम्—भगवद् शास्त्र
मया—मैंने (श्रीवल्लभाचार्यजीने)
निरूपितम्—निरूपण किया
यः—जो कोई जिज्ञासु
एतत्—इस ग्रन्थको
समधीयीत—अच्छी तरह पढ़े
तस्य, अपि—उसकी भी भगवानमें
दृढा, रतिः दृढ़ प्रीति
स्यात्—होती है

भावार्थः—इस प्रकार जिसका रहस्य गुप्त है ऐसा भगवत् शास्त्र मैंने निरूपण किया। जो भक्त इसका अच्छी तरहसे अध्ययन करेंगे। उनकी भी प्रभुमें दृढ भक्ति होगी ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्धिनी सम्पूर्णा ॥११॥

१२—जलभेदः

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान्।
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसन्देहवारकान् ॥१॥

पदच्छेदः—नमस्कृत्य, हरिम्, वक्ष्ये, तद्गुणानाम्, विभेदकान्। भावान्, विंशतिधा, भिन्नान्, सर्वसन्देहवारकान् ॥१॥

हरिम्—श्रीकृष्णको
नमस्कृत्य—नमन करके
तद्गुणानाम्—वक्ताओंके गुणोंके
विभेदकान्—भेद बतानेवाले
सर्वसन्देहवारकान्—समस्त सन्देहोंको दूर करनेवाले
विंशतिधा—बीस प्रकार के
भिन्नान्, भावान्—भेदवाले भावोंको
वक्ष्ये—कहता हूँ

भावार्थः—श्रीहरिको नमन करके वक्ताओंके गुणका भेद बतानेवाले समस्त सन्देहोंको दूर करनेवाले बीस प्रकारके भावोंको कहता हूँ ॥ १ ॥

गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तो हि जले मताः ।
गायकाः कूपसङ्काशा गन्धर्वा इति विश्रुताः ॥२॥

पदच्छेदः—गुणभेदाः, तु, तावन्तः, यावन्तः, हि, जले, मताः । गायकाः, कूपसङ्काशाः, गन्धर्वाः, इति, विश्रुताः ॥२॥

यावन्तः—जितने
जले—जलके गुणोंमें भेद हैं
तावन्तः—उतने
गुणभेदाः—वक्ताके गुणभेद हैं
गायकाः—गाने वाले
गन्धर्वाः—गन्धर्व नामसे
इति, विश्रुताः—प्रसिद्ध हैं वे
कूपसङ्काशाः — कूपके जलके समान होते हैं ।

भावार्थः—जितने प्रकारके जलके गुणोंमें भेद हैं उतने वक्ताओंमें भी भेद है गानेवाले गन्धर्व नामसे प्रसिद्ध हैं । वे कूप जलके समान होते हैं ॥ २ ॥

कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेऽपि सम्मताः ।
कुल्याः पौराणिकाः प्रोक्ताः पारम्पर्ययुता भुवि ॥३॥

पदच्छेदः—कूपभेदाः, तु, यावन्तः, ते, अपि, सम्मताः । कुल्याः, पौराणिकाः प्रोक्ताः, पारम्पर्ययुताः, भुवि ॥३॥

यावन्तः—जितने
कूपभेदाः— कूप भेद हैं
तावन्तः—उतने
ते, अपि—वे (वक्ता) भी
सम्मताः—माने गये हैं
भुवि—भूमण्डल में

पारम्पर्ययुताः—परम्परावाले
पौराणिकाः—पौराणिक
कुल्याः—नहर के जल के सदृश होते हैं।

भावार्थः—जितने कूपके भेद हैं उतने वक्ताओंके भी माने गये हैं इस भूमण्डलमें परम्परावाले पौराणिक नहरके जलके सदृश हैं। ।३ ॥

क्षेत्रप्रविष्टास्ते चापि संसारोत्पत्तिहेतवः।
वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्तसंज्ञिताः ॥४॥

पदच्छेदः—क्षेत्रप्रविष्टाः, ते, च, अपि, संसारोत्पत्तिहेतवः। वेश्यादिसहिताः, मत्ताः, गायकाः, गर्तसंज्ञिताः॥४॥

वेश्यादिसहिताः—वेश्यादि के सग रहनेवाले
मत्ताः—उन्मत्त
गायकाः—गान करनेवाले
गर्तसंज्ञिताः—गड्ढेके पानीके समान हैं।
क्षेत्रप्रविष्टाः—क्षेत्रमें प्रविष्ट हुए जलके समान
ते, अपि—वे भी
संसारोत्पत्तिहेतवः—संसारकी उत्पत्तिके हेतु हैं।

भावार्थः—जो वक्ता अपने कुटुम्बके भरण पोषणके निमित्त कथादि कहते हैं वे खेतमें प्रविष्ट जलके समान हैं। और जो गायक वेश्यादिके सङ्ग रहकर उन्मत्त होकर गान करते हैं, वे गड्ढेके जलके समान हैं॥ ४ ॥

जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः।
ह्रदास्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्पराः ॥५॥

पदच्छेदः—जलार्थम्, एव, गर्ताः, तु, नीचाः,

गानोपजीविनः । ह्रदाः, तु, पण्डिताः, प्रोक्ता, भगवच्छास्त्रतत्पराः ॥५॥

गानोपजीविनः—गानके द्वारा उपजीविका करनेवाले

नीचाः—नीच (वक्ता)

जलार्थम्—गन्दाजल भरनेके लिये बने हुए

एव, गर्ताः—ही खड्डे हैं

भगवच्छास्त्रतत्पराः—भगवत् शास्त्रमें तत्पर

पण्डिताः, तु—पण्डित तो

ह्रदाः—सरोवर

प्रोक्ताः—कहे गये हैं ।

भावार्थः—जो गायक अपनी आजीविकाके निमित्त गान करते हैं वे गड्ढेके गन्दे जलके समान हैं, भगवत् शास्त्रमें तत्पर विद्वज्जन तो निर्मल सरोवरके सदृश कहे गये हैं ॥ ५ ॥

सन्देहवारकास्तत्र सूदा गम्भीरमानसाः ।
सरःकमलसम्पूर्णा. प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः ॥६॥

पदच्छेदः—सन्देहवारकाः, तत्र, सूदाः, गम्भीरमानसाः । सरः कमलसम्पूर्णा, प्रेमयुक्ताः, तथा, बुधाः ।६।

तत्र—उनमें

गम्भीरमानसाः—गम्भीर मन वाले

सन्देहवारकाः—सन्देह दूर करनेवाला

तथा, प्रेमयुक्ताः—ऐसे प्रेमी

बुधाः—पण्डित

कमलसम्पूर्णाः—कमलसे पूर्ण

सरः—सरोवरके समान हैं ।

भावार्थः—जो वक्ता गम्भीर मन वाले हैं तथा अपने श्रोताओंके सब प्रकारके सन्देहोंको निवारण करने वाले हैं।

ऐसे प्रेमयुक्त पण्डितजन कमलोंसे सुशोभित सरोवरके समान हैं ॥ ६ ॥

अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ता वेशन्ताः परिकीर्तिताः ।
कर्मशुद्धाः पल्वलानि तथाल्पश्रुतभक्तयः ॥७॥

पदच्छेदः—अल्पश्रुताः, प्रेमयुक्ताः, वेशन्ताः, परिकीर्तिताः । कर्मशुद्धाः, पल्वलानि, तथा, अल्पश्रुतभक्तयः ॥७॥

प्रेमयुक्ताः—प्रेमी, किन्तु
अल्पश्रुताः—अल्पशास्त्र के ज्ञाता
वेशान्ताः—छोटे तालाब के सदृश
परिकीर्तिताः—कहे गये हैं ।
कर्मशुद्धाः—कर्मसे शुद्ध
तथा, अल्पश्रुतभक्तयः—तथा अल्पज्ञान और भक्तिवाले
पल्वलानि—छोटे जङ्गली खड्डे के समान कहे गये हैं ।

भावार्थः—भगवत् प्रेममे निमग्न, स्वल्प शास्त्रके ज्ञानवाले वक्ताओंको छोटे तालाबके जलके सदृश कहा है । और जिनके कर्म शुद्ध हैं तथा अल्प ज्ञान और अल्प भक्ति वाले हैं उनको जङ्गली छोटे गड्ढेके जलके समान कहा है ॥ ७ ॥

योगध्यानादिसंयुक्ता गुणा वर्ष्याः प्रकीर्तिताः ।
तपोज्ञानादिभावेन स्वेदजास्तु प्रकीर्तिताः ॥८॥

पदच्छेदः—योगध्यानादिसंयुक्ताः, गुणाः, वर्ष्याः, प्रकीर्तिता । तपोज्ञानादिभावेन, स्वेदजाः, तु, प्रकीर्तिताः ॥८॥

योगध्यानादिसंयुक्ताः—योग एवं ध्यानादि सम्पन्नके
गुणाः—भाव
वर्ष्याः—बरसातके जल समान है
तपोज्ञानादिभावेन—केवल तप

ज्ञान आदि भावके द्वारा वक्ता | जलके समान
तु, स्वेदजाः—तो पसीनाके | प्रकीर्तिताः—कहे गये हैं

भावार्थः—योग ध्यानादि सम्पन्न भगवद्गुण गानेमें तत्पर रहने वाले वर्षा ऋतुके जलके समान हैं। और जो तप तथा ज्ञान आदि से रहित हैं वे प्राणी शरीरके पसीनेके तुल्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः ।
कदाचित्काः शब्दगम्याः पतच्छब्दाः प्रकीर्तिताः ९

पदच्छेदः—अलौकिकेन, ज्ञानेन, ये, तु, प्रोक्ताः, हरेः, गुणाः । कदाचित्काः, शब्दगम्याः, पतत्, शब्दाः, प्रकीर्तिताः, ॥९॥

ये—जो
अलौकिकेन—अलौकिक वेदके
ज्ञानेन—ज्ञानके द्वारा
हरेः, गुणाः—श्रीहरिके गुण गाने वाले
कदाचित्काः—किसी २ समय
शब्द गम्याः—शब्द के द्वारा जानने योग्य
पतच्छब्दाः—गिरते हुए पर्वतीय प्रपातके शब्दकी तरह
प्रकीर्तिताः—कहे गये हैं

भावार्थः—जो अलौकिक ज्ञानसे किसी किसी समय शब्दके द्वारा जानने योग्य श्रीहरिका गुणगान करते हैं वे पर्वतसे गिरनेवाले प्रताप (निर्झर) के जलके समान कहे गये हैं ॥ ९ ॥

देवाद्युपासनोद्भूताः पृष्ट्वा भूमेरिवोद्गताः ।
साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गतः ॥१०॥

प्रेममूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्यन्दमानाः प्रकीर्तिताः ।

पदच्छेदः—देवाद्युपासनोद्भूताः, पृष्वा, भूमे, इव, उद्गताः । साधनादिप्रकारेण, नवधाभक्तिमार्गतः । प्रेम-मूर्त्या, स्फुरद्धर्माः स्यन्दमानाः प्रकीर्तिताः ॥ १०½ ॥

देवाद्युपासनोद्भूताः—देवादिकी उपासनासे उत्पन्न होनेवाला भाव

भूमेः—पृथ्वी से

उद्गताः—उत्पन्न होनेवाले

पृष्वाः—स्वल्पजलके

इव—सदृश होते हैं ।

साधनादिप्रकारेण—साधनादिकी रीतिसे

नवधा—नव प्रकारके हैं

भक्तिमार्गतः—भक्तिमार्गसे

प्रेममूर्त्या—प्रेम से परिपूर्ण

स्फुरद्धर्माः—भगवानका स्मरण रूप धर्म जिनका प्रकट होता है

स्यन्दमानाः—झरने के तुल्य

प्रकीर्तिताः—कहे गये हैं

भावार्थः—देवताओंकी उपासना करनेवाले वक्तागण पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले स्वल्प जलके समान कहे गये हैं । प्रेमपूर्वक नवधा भक्ति मार्गके द्वारा भगवानका स्मरण रूप धर्म जिनका परम साधन है । ऐसे वक्ताओंको पर्वतसे निकले हुए निर्झरके परम पवित्र निर्मल जलके समान कहा है ॥ १०½ ॥

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धित्रयविवर्जिताः ॥ ११ ॥

स्थावरास्ते समाख्याता मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ।

पदच्छेद—यादृशाः, तादृशाः प्रोक्ताः वृद्धत्रयविवर्जिताः, । स्थावराः, ते, समाख्याताः, मर्यादैकप्रतिष्ठिताः ११½

यादृशाः—जैसे प्रथम कहे हैं

तादृशाः—वैसे ही साधननिष्ठ

वृद्धिक्षयविवर्जिताः—वृद्धिक्षय से रहित

प्रोक्ताः—कहे गये हैं।

मर्यादैकप्रतिष्ठिताः—केवल मर्याद भावमें प्रतिष्ठित

ते, स्थावराः—वे स्थावर जलाशयके सदृश

समाख्याताः—कहे हुए हैं

भावार्थः—जिस प्रकार पहिले कहे गये हैं उसी प्रकार नवधा भक्तिके अनुसार साधनयुक्त वृद्धि और क्षयसे रहित अर्थात् सांसारिक सुख, दुःख हीन और मर्यादा मार्गमें परिनिष्ठित वक्ता महाशयोंको स्थावर जलाशयके सदृश कहा है ॥११½॥

अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा ॥१२॥
सङ्गादिगुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुता भुवि ।
निरन्तरोद्गमयुता नद्यस्ते परिकीर्तिताः ॥१३॥

पदच्छेदः—अनेकजन्मसंसिद्धाः, जन्मप्रभृति, सर्वदा । संगादिगुणादोषाभ्याम्, वृद्धिक्षययुताः, भुवि । निरन्तरोद्गमयुताः, नद्यः, ते, परिकीर्तिताः ॥ १३ ॥

अनेकजन्मसंसिद्धाः—अनेक जन्मोंके द्वारा संसिद्ध अतएव

जन्मप्रभृति—जन्मसे लेकर

सर्वदा—सदैव

भुवि—पृथ्वीमें

संगादिगुणदोषाभ्याम्—संगादिके गुण और दोषोंसे

वृद्धिक्षययुताः—वृद्धि और क्षयको प्राप्त होते हुए

ते, निरन्तरोद्गमयुताः—वे निरन्तर जन्म लेनेवाले

नद्यः—नदीके सदृश

परिकीर्तिताः—कहे गये हैं।

भावार्थ--जो अनेक जन्मोंसे सिद्धिके लिये प्रयत्नशील हैं परन्तु जन्मान्तरोंमें दुःसंग और सुसंगके गुणदोषोंसे ईश्वरमें उनका प्रेम कभी कम और कभी अधिक हो जाता है वे निरन्तर प्रवाहवाली नदीके जलके समान हैं ॥ १३ ॥

एतादृशाः स्वतन्त्राश्चेत् सिन्धवः परिकीर्तिताः ।
पूर्णा भगवदीया ये शेषव्यासाग्निमारुताः ॥ १४॥

पदच्छेदः—एतादृशाः, स्वतन्त्राः, चेत्, सिन्धवः, परिकीर्तिताः । पूर्णाः, भगवदीयाः, ये, शेषव्यासाग्निमारुताः ।१४।

एतादृशाः — उपरोक्त १७ वें वक्ताओंके सदृश

स्वतन्त्राः—स्वतन्त्र

चेत्—होय अर्थात् मनकी सर्व उपाधि मुक्त हो तो

सिन्धवः—सिन्धुमें मिलनेवाली नदीके समान

परिकीर्तिताः—कहे गये हैं

ये, पूर्णाः—जो पूर्ण

भगवदीयाः—भगवदीय

शेषव्यासाग्निमारुता—शेष, व्यास अग्नि (श्रीमहाप्रभुजी) हनुमानजी

भावार्थः—उपरोक्त १७वें वक्ताओंके सदृश स्वतन्त्र हो तो अर्थात् मनकी सब उपाधिसे मुक्त हों तो वे सागरमें मिलने वाली बड़ी नदीके तुल्य हैं । जैसे कि पूर्ण भगवदीय शेष, व्यास, अग्नि, श्रीवल्लभाचार्यजी, हनुमान इत्यादि हैं ॥ १४ ॥

जडनारदमैत्रेयास्ते समुद्राः प्रकीर्तिताः ।
लोकवेदगुणैर्मिश्रभावेनैके हरेर्गुणान् ॥१५॥
वर्णयन्ति समुद्रास्ते चाराध्याः षट् प्रकीर्तिताः ।

पदच्छेदः—जड़नारदमैत्राद्याः, ते, समुद्राः, प्रकीर्तिताः। लोकवेदगुणैः, मिश्रभावेन, एके, हरेः, गुणान्। वर्णयन्ति, समुद्राः, ते, क्षाराद्याः, षट्, प्रकीर्तिताः ॥ १५½ ॥

जड़नारदमैत्राद्याः—जड़ भरत, नारद, मैत्रेय आदि भगवदीय

ते, समुद्राः—वे समुद्रके समान

प्रकीर्तिताः—कहेगये हैं और कोई

लोकवेदगुणैः—लौकिक और वैदिक गुणोंसे

मिश्रभावेन—मिश्र भावके द्वारा

हरेः, गुणान्—हरिके गुणोंको

वर्णयन्ति—वर्णन करते हैं

ते, क्षाराद्याः—वे क्षार आदि

षट्, समुद्राः—छः समुद्रोंके तुल्य

प्रकीर्तिताः कहे गये हैं

भावार्थः—इसी प्रकार जड़भरत, नारद, मैत्रेय आदि महानुभावोंको समुद्रके जलके समान कहा है। और जो वक्ता लौकिक और वैदिक गुणोंसे मिश्रित श्रीहरिके गुणानुवादको गाते हैं वे क्षारादि छः समुद्रोंके समान कहे गये हैं ॥ १५½ ॥

गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १६ ॥
सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः।
तेऽमृतोदाः समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् १७

पदच्छेदः—गुणातीततया, शुद्धान्, सच्चिदानन्दरूपिणः, सर्वान्, एव, गुणान्, विष्णोः, वर्णयन्ति, विचक्षणाः। ते, अमृतोदाः, समाख्याताः, तद्वाक्पानम्, सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥

गुणातीततया—भगवानके गुण प्रकृतिके गुणोंसे परे होनेके कारण

शुद्धान्—शुद्ध एवं

सच्चिदानन्दरूपिणः—सच्चिदानन्द स्वरूप हैं

विचक्षणाः—बुद्धिमान् भक्तगण

विष्णोः—श्रीविष्णुके

सर्वान् गुणान्—सम्पूर्ण गुणोंका

वर्णयन्ति—वर्णन करते हैं

ते अमृतोदाः—वे अमृत देनेवाले समुद्रके सदृश

समाख्याताः—कहे गये हैं

तद्वाक्यानाम्—उनके वचनामृतका पान (श्रवण)

सुदुर्लभम्—अत्यन्त दुर्लभ होता है।

भावार्थः—जो वक्ता गुणातीत, शुद्ध और सच्चिदानन्द रूप विष्णुभगवानके समस्त गुणोंका ही वर्णन करते हैं, वे अमृत सिन्धुके समान कहे गये हैं उनके वचनामृतका पान परम दुर्लभ है ॥१७॥

तादृशानां क्वचित् वाक्यं दूतानामिव वर्णितम्।
अजामिलाकर्णनवद् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ॥१८॥

पदच्छेदः—तादृशानाम्, क्वचित्, वाक्यम्, दूतानाम्, इव, वर्णितम्। अजामिलाकर्णनवत्, बिन्दुपानम्, प्रकीर्तितम् ॥१८॥

तादृशानाम्—ऐसे भगवद्दीयोंके

वाक्यम्—वचनामृत

क्वचित्—कहीं

दूतानाम् इव—विष्णुपार्षदोंके समान

वर्णितम्—वर्णित है

आजामिलाकर्णनवत्—अजामिल के श्रवण करने के सदृश

बिन्दुपानम्—श्रवणामृतके बिन्दुपानके सदृश

प्रकीर्तितम्—कहा है।

भावार्थः—इस प्रकारके भगवद्दीयोंके वचनामृतका पान कहीं २ पर भगवत् पार्षदोंके समान हैं। जिस प्रकार अजामिलके समान उनके वाक्योंको बिन्दुपानके समान सुखकर कहा गया है ॥१८॥

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गमकारणम्॥१९॥

पदच्छेदः—रागाज्ञानादिभावानाम्, सर्वथा, नाशनम्, यदा। तदा लेहनम्, इति, उक्तम्, स्वानन्दोद्गमकारणम् १९

यदा—जब

रागाज्ञानादिभावानाम्—राग अज्ञानादि भावोंका

सर्वथा—अच्छी रीतिसे

नाशनम्—नाश हो

तदा—तब

स्वानन्दोद्गमकारणम्—अपने आनन्दकी उत्पत्तिका कारण रूप कीर्तन

इति—यह

लेहनम्—स्वाद प्राप्ति

उक्तम्—कहा है।

भावार्थः—जब कि सांसारिक राग और अज्ञानादि पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं। उस समयका भगवद्गुण गान अपने आनन्दका उत्पत्तिका कारण हो जाता है। तब वह लेहन जलके सदृश कहा जाता है। ऐसे वक्ता अपने आप सदैव गुणगानमें तत्पर रहते हैं ॥१९॥

उद्धृतोदकवत् सर्वे पतितोदकवत् तथा ।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथा ततः ॥२०॥

पदच्छेदः—उद्धृतोदकवत्, सर्वे, पतितोदकवत्, तथा, उक्तातिरिक्तवाक्यानि, फलम्, च, अपि, तथा, ततः ॥२०॥

उक्तातिरिक्तवाक्यानि—कहे हुए वक्ताओंसे भिन्न वचन-वाले वक्ता

सर्वे—अन्य सब वक्ता

उद्धृतोदकवत्—ऊपर निकले हुए जलके सदृश

तथा तथा

पतितोदकवत् पृथ्वीमें गिरे जलके सदृश हैं

ततः, फलम् उनका फल

अपि—भी

तथा—वैसा ही होता है

भावार्थः—ऊपर जितने प्रकारके वक्ताओंके भेद कहे गये हैं इनके अतिरिक्त दूसरे प्रकारके जो वक्ता हैं जिनका उल्लेख इस ग्रन्थमें नहीं किया गया है वे सब अपने उपयोग कर लेनेके पश्चात् जो निरर्थक जल है उसके समान उन्हें निरर्थक ही जानना। सारांश यह है कि ऐसे निरर्थक वक्ताओंको तथा उनके श्रोताओंको किसी प्रकारका लाभ नहीं हो सकता ॥ २० ॥

इति जीवेन्द्रियगता नानाभावं गता भुवि ।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः ॥२१॥

पदच्छेदः—इति, जीवेन्द्रियगताः, नानाभावम्, गताः, भुवि। रूपतः, फलतः, च, एव, गुणाः, विष्णोः निरूपिताः २१

इति, रूपतः—इस प्रकार रूपसे

फलतः, भुवि—फलसे पृथ्वीपर

नानाभावम्—पृथक् २ भावको

गताः—प्राप्त हुए

जीवेन्द्रिगताः — जीव और इन्द्रियोंमें रहते हुए

विष्णोः, गुणाः—विष्णुके गुण

निरूपिताः—निर्णय किये हैं

भावार्थः—इस प्रकार जीवोंकी इन्द्रियोंमें विद्यमान विष्णु भगवानके गुणोंका अनेक जलके भेदोंके दृष्टान्त देकर उनके रूप तथा फल सहीत मैंने (श्रीवल्लभाचार्य ने) निरूपण किया है ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितो जलभेदः सम्पूर्णः ॥१२॥

१३—पञ्चपद्यानि

श्रीकृष्णरसविच्छिप्तमानसाऽरतिवर्जिताः ।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ॥१॥

पदच्छेदः—श्रीकृष्णरसविच्छिप्तमानसाः, अरतिवर्जिताः, अनिर्वृताः, लोकवेदे ते, मुख्याः, श्रवणोत्सुकाः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णरसविच्छिप्तमानसा— श्रीकृष्णके भजनानन्द रूपी रसमें जिनका मन विक्षिप्त है

लोकवेदे—लोक और वेदमें

अनिर्वृताः—आनन्द रहित

श्रवणोत्सुकाः — भगवत्कथा सुननेमें उत्साह वाले

अरतिवर्जिताः—अरति अप्रेम उससे जो रहित अर्थात् प्रीतियुक्त हैं।

ते, मुख्याः—वे मुख्य उत्तम श्रोता हैं।

भावार्थः—जिन्होंने प्रेमयुक्त होकर भगवान् श्रीकृष्णके भजनानन्दरूपी रसमें अपना मन विक्षिप्त किया है तथा श्रवणमें प्रीतिवाले हैं तथा लोक और वेदके सुखमें जिन्होंने आनन्द

नहीं मानता है तथा भगवत्कथा सुननेमें उत्साह वाले हैं वे उत्तम श्रोता हैं ॥१॥

विक्लिन्नमनसो ये तु भगवत्स्मृतिविह्वलाः ।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः ॥२॥

पदच्छेदः—विक्लिन्नमनसः, ये, तु, भगवत्स्मृति-विह्वलाः । अर्थैकनिष्ठाः, ते, च, अपि, मध्यमाः, श्रवणोत्सुकाः ॥२॥

विक्लिन्नमनसः — विशेषकर जिनका मन आर्द्र है
भगवत्स्मृतिविह्वलाः — जिस समय भगवत् स्मृति हो उस समय जिनका मन विह्वल होजाता है ऐसे
श्रवणोत्सुकाः — भगवानके गुणश्रवणमें उत्साहवाले
च, ये—और जो
अर्थैकनिष्ठाः—अर्थमें मुख्य निष्ठावाले हैं
ते, अपि—वे भी
मध्यमाः—मध्यम श्रोता हैं

भावार्थः—इस प्रकार विशेष रूपसे भगवत् स्मरणमें जिनका मन आर्द्र तथा विह्वल हो जाता है, ऐसे भगवानके गुणश्रवणमें उत्साहवाले और जो अर्थ अर्थात् अर्थादिमें मुख्य निष्ठा रखते हैं, वे मध्यम श्रोता कहलाते हैं ॥२॥

निःसन्दिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।
ते त्वावेशात् तु विकला निरोधाद्वा न चान्यथा॥३॥

पदच्छेदः—निःसंदिग्धम्, कृष्णातत्त्वम्, सर्वभावेन, ये, विदुः । ते, तु, आवेशात्, तु, विकलाः, निरोधात्, वा, न, च, अन्यथा ॥ ३ ॥

ये,—जो श्रोता
निःसन्दिग्धम्—सन्देहरहित;
कृष्णतत्त्वम्—श्रीकृष्ण-तत्त्वको
सर्वभावेन—सर्व भाव द्वारा
विदुः, ते—जानते हैं वे
आवेशात्—(श्रवणके अवसर पर) आवे
वा, निरोधात्,—अथवा निरोधसे
विकलाः—विकल हो जाते हैं
न, च, अन्यथा—अन्य रीतिसे नहीं ।

भावार्थः—जो भक्तगण सन्देहरहित होकर सर्वभाव द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके तत्वको भली भाँति जानते हैं, वे आवेश द्वारा अथवा निरोधसे विकल हो जाते हैं किसी प्रकारकी व्याजरीतिसे नहीं होते, वे पूर्ण भक्त होते हैं ॥ ३ ॥

पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।
अन्यासक्तास्तु ये केचिदधमाः परिकीर्तिताः ॥४॥

पदच्छेदः—पूर्णभावेन, पूर्णार्थाः, कदाचित्, न, तु, सर्वदा । अन्यासक्ताः, तु, ये, केचित्, अधमाः, परिकीर्तिताः ॥४॥

कदाचित्—किसी समय
पूर्णभावेन—पूर्णभावके द्वारा
पूर्णार्थाः—पूर्ण अर्थवाले हैं
तु, सर्वदा—किन्तु सदैव
न, ये, केचित्—नहीं जो कोई
अन्यासक्ताः—अन्य (लौकिक-वैदिक) में आसक्तिवाले
ते, अधमाः—वे अधम श्रोता
परिकीर्तिताः—कहे गये हैं

भावार्थः—कभी पूर्ण रीतिसे सफल मनोरथ भी हो जाता है । परन्तु वह भाव उनका सदा स्थायी नहीं रहता और लौकिक तथा वैदिक अन्य कार्य्योंमें भी कुछ आसक्त रहते हैं वे अधम श्रोता कहे गये हैं ॥ ४ ॥

अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।
देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मप्रकारतः ॥५॥

पदच्छेदः—अनन्यमनसः, मर्त्याः, उत्तमाः, श्रवणादिषु । देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्म प्रकारतः ॥ ५ ॥

देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मप्रकारतः—देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र और कर्मके प्रकारसे	अनन्यमनसः—अनन्य मनवाले मर्त्याः—मनुष्य श्रवणादिषु—श्रवणादिमें उत्तमाः—उत्तम हैं

भावार्थः—देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मन्त्र और कर्मको जानकर उसके अनुसार जो यज्ञादि कार्य्य करते हैं उनकी अपेक्षा अनन्य मनसे श्रवणादि नवधा भक्तिवाले श्रोता उत्तम कहे गये हैं ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि सम्पूर्णानि ॥१३॥

१४—संन्यासनिर्णयः

पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः ॥१॥

पदच्छेदः—पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थम्, परित्यागः, विचार्यते । सः मार्गद्वितीये, प्रोक्तः, भक्तौ, ज्ञाने, विशेषतः ॥१॥

पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थम्—पश्चात्ताप की निवृत्तिके लिये।
परित्यागः—परित्याग अथवा संन्यास
विचार्यते—विचार किया जाता है
सः—वह (संन्यास)
विशेषतः—विशेषरूपसे
भक्तौ, ज्ञाने—भक्ति और ज्ञानमें
मार्गद्वितीये—इन दोनों मार्गोंमें
प्रोक्तः—कहा है।

भावार्थः—पश्चात्तापकी निवृत्तिके लिये परित्यागके विषयमें विचार करते हैं। सन्यास ग्रहणके दो मार्ग हैं। एक तो भक्तिमार्गीय सन्यास और दूसरा ज्ञानमार्गीय संन्यास बताया है ॥ १ ॥

कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालतः।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद् विचारणा ॥ २॥

पदच्छेदः—कर्ममार्गे, न, कर्तव्यः, सुतराम्, कलिकालतः। अतः आदौ, भक्तिमार्गे, कर्तव्यत्वात्, विचारणा ॥२॥

सुतराम्—विशेषरूपसे
कलिकालतः—कलियुगके कारण
कर्ममार्गे—कर्ममार्गमें (संन्यास)
कर्तव्यः, न—करनेयोग्य नहीं है
अतः—इसलिये
आदौ—प्रथम
भक्तिमार्गे—भक्तिमार्गमें
कर्तव्यत्वात्—करने योग्य होनेके कारण (संन्यास) का
विचारणा—विचार करते हैं।

भावार्थ—इस समय कराल कलिकाल है, इसलिये कर्ममार्गकी प्रणालीके अनुसार त्याग अर्थात् संन्यास नहीं करना चाहिये। भक्तिमार्गके अनुसार संन्यास ग्रहण करना हमारा परम कर्तव्य है, इसलिये प्रथम इस भक्तिमार्गीय सन्यास पर विचार करते हैं ॥२॥

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यश्चेत् स नेष्यते।
सहायसंगसाध्यत्वात् साधनानां च रक्षणात् ॥३॥
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधतः।

पदच्छेदः—श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थम्, कर्तव्यः, चेत्, सः, न, इष्यते। सहायसंगसाध्यत्वात्, साधनानाम्, च, रक्षणात्, अभिमानात्, नियोगात्, च तद्धर्मैः, च, विरोधतः ३

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थम्—श्रवणादिकी विशेष सुविधाके लिये
कर्तव्यः—संन्यास करने योग्य है
चेत्—यदि ऐसा कहा जाय तो
न, इष्यते—वहभी उचित नहीं है।
सहायसंगसाध्यत्वात्—सहायता और संगके सिद्ध होनेसे और
साधनानाम्—साधनोंके
रक्षणात्—रक्षासे
अभिमानात्—अभिमान होनेसे
नियोगात्—श्रवणादि निरन्तरमें भेदसे
तद्धर्मैः—उनके धर्मोंसे
च—और
विरोधतः—विरोध होनेसे

भावार्थः—श्रवणादि नवधा भक्तिमें प्रवृत्त होनेके लिये त्याग (**सन्यास**) करना सर्वथा उचित नहीं है, क्योंकि नवधा भक्तिके साधनोंकी रक्षा करनेके लिये दूसरे मनुष्योंकी सहायता की परमावश्यकता रहती है। और सन्यास अवस्थामें अभिमान और सन्यासीके धर्म भक्तिमार्गके विरुद्ध होते हैं ॥३॥

गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ॥४॥
अग्रेपि तादृशैरेव संगो भवति नान्यथा।

स्वयं च विषयाक्रान्तः पाखण्डी स्यात् तु कालतः ५

पदच्छेदः—गृहादेः, बाधकत्वेन, साधनार्थम्, तथा, यदि। अग्रे, अपि, तादृशैः, एवं, संगः, भवति, न, अन्यथा। स्वयम्, च, विषयाक्रान्तः, पाखण्डी, स्यात्।

यदि—जो
गृहादेः—घर आदिकी
बाधकत्वेन—बाधकता होनेसे
साधनार्थम्—साधन है
अग्रे, अपि—आगे भी
तादृशैः एवं—उनके समान ही
संगः—समागम
भवति—होता है
न, अन्यथा—दूसरे प्रकारसे नहीं होता
च, स्वयम्—और अपने आप
विषयाक्रान्तः—विषयासक्त
पाखण्डी, तु—पाखण्डी, फिर
कालतः—काल बलसे
स्यात्—होता है।

भावार्थः—नवधा भक्तिके साधन करनेमें गृहको बाधकता समझकर यदि त्याग (संन्यास) ग्रहण किया जाय तो आगे भी इसी प्रकारके मनुष्योंका समागम होगा। कोई अच्छे महात्मा नहीं मिलेंगे, क्योंकि कराल कलिकाल है अतः यदि इन पाखण्डियोंके साथ रहना पड़े तो स्वयं भी विषयाक्रान्त हो सकते हैं॥ ५॥

विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः॥६॥

पदच्छेदः—विषयाक्रान्तदेहानाम्, न, आवेशः, सर्वदा,

हरेः । अतः, अत्र, साधने, भक्तौ, न, एव, त्यागः, सुखावहः ॥६॥

विषयाक्रान्तदेहानाम्— जिनका देह विषयासक्त है उनको

हरेः—श्रीहरिका

आवेशः—आवेश

सर्वदा, न— सर्वदा नहीं होता

अतः, अत्र—इसलिये यहाँपर

भक्तौ—भक्तिमर्गमें भी

साधने—साधनावस्थामें

त्यागः—संन्यास

सुखावहः, न—सुखप्रद नहीं

एव—ही है।

भावार्थः—जिनके हृदयोंमें विषयवासनायें अपना स्थान बनाये हैं। उनके हृदयमें प्रभुका आवेश कभी नहीं हो सकता। इसलिये भक्तिमार्गका साधन करनेके लिये तो इस समय त्याग (संन्यास) ग्रहण करना सुखप्रद नहीं हो सकता है॥ ६ ॥

विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते।
स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थं वेषः सोऽत्र न चान्यथा ॥७॥

पदच्छेदः—विरहानुभवार्थम्, तु, परित्यागः, प्रशस्यते। स्वीयबन्धनिवृत्यर्थम्, वेषः, सः, अत्र, न, च, अन्यथा ॥७॥

विरहानुभवार्थम्— भगवान्के विरहके निमित्त

तु, परित्यागः—तो संन्यास

प्रशस्यते—प्रशंसा योग्य है

स्वीयबन्धनिवृत्यर्थम्— अपने स्त्री पुत्रादिके होनेवाले बन्धनकी निवृत्ति करने के लिये

वेषः—संन्यासका त्रिदण्ड, कौपीन धारणादि भेष

सः, अत्र—वह इस भक्ति मार्गमें

अन्यथा, च, न—अन्य किसी कारण नहीं है

भावार्थः—विरहका अनुभव करनेके लिये ही परित्याग अर्थात् संन्यास ग्रहण करना उचित कहा है यह भक्तिमार्गीय संन्यास अपने कुटुम्बके मनुष्योंका मोहरूपी बन्धन तोड़ने अर्थात् उनके सम्बन्धसे होनेवाली विविध उपाधियोंसे बचनेके लिये भेष बदल दिया जाता है और कुछ भी कारण नहीं है ॥७॥

कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत् ।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ॥८॥

पदच्छेदः—कौण्डिन्यः, गोपिकाः, प्रोक्ताः, गुरवः, साधनम्, च, तत् । भावः, भावनया, सिद्धः, साधनम्, न, अन्यत्, इष्यते ॥८॥

कौण्डिन्यः—कौण्डिन्य ऋषि और	**तत् भावनया**—उनकी भावना द्वारा
गोपिकाः—गोपीजनको	**सिद्धभावः**—सिद्धभाव है
गुरवः—(भक्तिमार्ग) में गुरु	**अन्यत् साधनम्**—दूसरा साधन
प्रोक्ताः—कहा है	**न, इष्यते**—नहीं इष्ट है ।
साधनम् च,—साधन और	

भावार्थः—इस मार्गमें कौण्डिन्य ऋषि और गोपिकाएँ गुरु हैं और उन्होंने जो साधन किया वही साधन श्रेष्ठ है। भाव भावनाके द्वारा सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई साधन परमोत्तम नहीं है ॥८॥

विकलत्वं तथा स्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं न हि ।
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः ॥९॥

पदच्छेदः—विकलत्वम्, तथा, स्वास्थ्यम्, प्रकृतिः,

प्राकृतम्, न, हि। ज्ञानम्, गुणाः, च, तस्य, एव, वर्तमानस्य, बाधकाः ॥९॥

विकलत्वम्—विकलता
तथा—और
अस्वास्थ्यम्—अस्वस्थता
प्रकृति—स्वभाव
प्राकृतम्, न—प्राकृत नहीं
हि, तस्य, एव—और उनका ही
वर्तमानस्य—विद्यमानका
ज्ञानम्, च, गुणाः—ज्ञान और गुण:
बाधका:—बाधक होते हैं

भावार्थः—इस मार्गमें विकलता अस्वस्थता तथा स्वभाव प्राकृत मनुष्योंके तुल्य नहीं रहता है। इस प्रकारकी अवस्थामें रहनेवाले भक्तजनोंके लिये ज्ञान और लौकिक गुण बाधक होते हैं ॥९॥

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात् संन्यासेन विशेषितात्।
भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत् ॥१०॥

पदच्छेदः—सत्यलोके, स्थितिः, ज्ञानात्, संन्यासेन, विशेषितात्। भावनासाधनम्, यत्र, फलम्, च, अपि, तथा, भवेत् ॥१०॥

संन्यासेन—संन्यासके द्वारा
विशेषतात्—विशेष होनेसे
ज्ञानात्—ज्ञानसे
सत्यलोके—सत्यलोकमें
स्थितिः—स्थिति (होती है)।
यत्र, भावना—जहाँ भावना
साधनम्—साधन
फलम्—फल
च, अपि—और भी
तथा, भवेत्—ऐसे ही हो

भावार्थः—ज्ञान मार्गके अनुसार संन्यास लेनेसे उसको विशेष करके सत्यलोककी प्राप्ति होती है। परन्तु यहाँ तो भक्ति ही साधन है। तब उसका फल भी साक्षात् प्रभु दर्शन प्राप्ति है ॥१०॥

तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठन्त्येव न संशयः ।
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद् यदि ११
तदैव सकलो बन्धो नाशमेति न चान्यथा ।

पदच्छेदः—तादृशाः, सत्यलोकादौ, तिष्ठन्ति, एव न, संशयः। बहिः, चेत्, प्रकटः, स्वात्मा, वह्निवत्, प्रविशेत्, यदि। तदा, एव, सकलः, बन्धः नाशम्, एति, न, च, अन्यथा ॥११½॥

तादृशाः—ऐसे प्रबल ज्ञानवाले
सत्यलोकादौ—सत्यलोकादिमें
तिष्ठन्ति—रहते हैं
एव—निश्चय ही
न, संशयः—संशय नहीं है
बहिः, चेत्—बाहर यदि
प्रकटः—प्रकट
स्वात्मा—अपनी आत्मा
वह्निवत्—अग्निके तुल्य
यदि, प्रविशेत्—जो प्रवेश करे
तदा, एवः—तब ही
सकलः—समस्त
बन्धः—बन्धन
नाशम्, एति—नष्ट होजाते हैं
च—और
अन्यथा, न अन्यथा नहीं

भावार्थः—ज्ञानमार्गके अनुसार संन्यास लेनेवाले तो निःसन्देह सत्यलोक आदिमें ही पहुँचते हैं। परन्तु भक्तिमार्ग

में तो अपना ही आत्मा बाहरसे प्रकट होकर अग्निके समान जब हृदयमें प्रवेश करता है तब समस्त सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥११॥

गुणास्तु सङ्गराहित्याज्जीवनार्थं भवन्ति हि ॥१२॥
भगवान् फलरूपत्वान्नात्र बाधक इष्यते ।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुध्यते ।१३।

पदच्छेदः—गुणाः, तु, संगराहित्यात्, जीवनार्थम्, भवन्ति, हि । भगवान्, फलरूपत्वात्, न, अत्र, बाधकः, इष्यते । स्वास्थ्यवाक्यम्, न, कर्तव्यम्, दयालुः, न, विरुध्यते ॥१३॥

गुणाः तु—भगवद्गुण तो
संगराहित्यात्—भगवत् संग न होनेके कारण
जीवनार्थम्—जीवनकी रक्षाके निमित्त
हि, भवन्ति—निश्चय ही होते हैं
भगवान्—श्रीभगवान्
फलरूपत्वात्—फलरूप होनेके कारण
अत्र, बाधकः—यहाँ विघ्नकर्ता
न, इष्यते—नहीं हो सकते
स्वास्थ्यवाक्यम्—स्वस्थता हो इस प्रकारके वाक्य
न, कर्तव्यम्—नहीं करना चाहिये
दयालुः, न—दयालु नहीं
विरुध्यते—विरुद्ध होते हैं ।

भावार्थ—लौकिक आसक्ति रहितोंको भगवत् गुणगान ही जीवन है । इस भक्तिमार्गमें तो भगवान् ही स्वयं फल रूप हैं इस प्रकार यह बाधकता कुछ नहीं है । स्वस्थता

का वचन भगवानके लिये कर्तव्य नहीं हैं, क्योंकि भगवान् सदा दयालु हैं वे अपनी दयालुताके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करते हैं ॥१३॥

दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिध्यति नान्यथा ।
ज्ञानमार्गे तु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ।१४।

पदच्छेदः—दुर्लभः, अयम्, परित्यागः, प्रेम्णा, सिध्यति, न, अन्यथा । ज्ञानमार्गे, तु, संन्यासः, द्विविधः, अपि, विचारितः ॥१४॥

अयम्, परित्यागः — यह परित्याग
दुर्लभः—दुर्लभ है किन्तु
ज्ञानमार्गे, तु—ज्ञानमार्गमें तो
संन्यासः—संन्यास
प्रेम्णा—प्रेमके द्वारा
सिध्यति—सिद्ध होता है
अन्यथा, न—अन्यथा नहीं ।
द्विविधः, अपि—दो प्रकारका भी
विचारितः—कहा गया है ।

भावार्थः—यह परित्याग (सन्यास) दुर्लभ है वह प्रेमके द्वारा सिद्ध होता है अन्य साधनोंसे नहीं । ज्ञानमार्गमें सन्यास दो प्रकारका कहा गया है ॥ १४ ॥

ज्ञानार्थमुत्तराङ्गं च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् ।
ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान् मतम् ॥१५॥

पदच्छेदः—ज्ञानार्थम्, उत्तरांगम्, च, सिद्धिः, जन्मशतैः, परम् । ज्ञानम्, च, साधनापेक्षम्, यज्ञादि-श्रवणात्, मतम् ॥१५॥

ज्ञानार्थम्—ज्ञानप्राप्तिके लिये
उत्तरांगम्—अन्तिम अङ्ग है
च—और
परम सिद्धिः—किन्तु सिद्धि
जन्मशतैः—शतशः जन्मोंके पश्चात्
ज्ञानम् च—ज्ञान और
साधनापेक्षम्—साधनकी अपेक्षा रखनेवाला
यज्ञादिश्रवणात्—यज्ञादि करने को शास्त्रोंमें
मतम्—माना हुआ है।

भावार्थः—ज्ञान प्राप्तिके लिये (विविदिषा संन्यास) और उत्तराङ्ग (विद्वत् संन्यास) अनेक जन्मोंके पश्चात् सिद्धि देने वाला है। यज्ञादिक करनेका कथन शास्त्रमें होनेसे ज्ञानका साधनकी अपेक्षा स्पष्ट है॥ १५॥

अतः कलौ सः संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा।
पाखण्डित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत् १६
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादितिस्थितिः।

पदच्छेदः—अतः, कलौ, सः, संन्यासः, पश्चात्तापाय, न, अन्यथा। पाखण्डित्वम् भवेत्, च, अपि, तस्मात्, ज्ञाने, न, च, संन्यसेत्। सुतराम्, कलिदोषाणाम्, प्रबलत्वात्, इति, स्थितिः॥१६½॥

अतः—इसलिये
कलौ—कलियुगमें
सः संन्यासः—वह संन्यास
पश्चात्तापाय—पश्चातापके लिये है
अन्यथा—अन्य प्रकारका भी
अर्थात्—विविदिषा
न—योग्य नहीं है
च, अपि—और भी
पाखण्डित्वम्—पाखण्डिता
भवेत्—होती है

तस्मात्—अतएव
ज्ञाने—ज्ञान मार्गमें
न, संन्यसेत्—संन्यास ग्रहण न करे
कलिदोषाणाम्—कलिके दोषोंको
प्रबलत्वात्—प्रबलता होनेके कारण
सुतराम्—विशेष करके
इति—ऐसा ही
स्थितिः—निर्णय है

भावार्थः—अतएव ज्ञानमार्गीय सन्यास कलियुगमें पश्चात्तापके निमित्त ही है। अन्य प्रकारसे फलप्रद नहीं है। फिर इस प्रकारके संन्याससे पाखण्डिता हो जाती है इसलिये ज्ञान मार्गमें संन्यास लेना किसी प्रकार उचित नहीं है। कलियुगके दोषोंकी विशेष प्रबलताके कारण इस प्रकार पूर्वोक्त व्यवस्था प्रदर्शित की गई है॥ १६½॥

भक्तिमार्गेऽपि चेद् दोषस्तदा किं कार्यमुच्यते १७
अत्रारम्भे न नाशः स्याद् दृष्टान्तस्याप्य भावतः।
स्वास्थ्यहेतोःपरित्यागाद् बाधःकेनास्य सम्भवेत् १८

पदच्छेदः—भक्तिमार्गे, अपि, चेत्, दोषः, तदा, किम्, कार्यम्, उच्यते। अत्र, आरम्भे, न, नाशः, स्यात्, दृष्टान्तस्य अपि, अभावतः। स्वास्थ्यहेतोः, परित्यागात्, बाधः, केन, अस्य, सम्भवेत्॥१८॥

भक्तिमार्गेऽपि—भक्तिमार्गमें भी
चेत्, दोषः, तदा—यदि दोष तब
किम्, कार्यम्—क्या करना
उच्यते—कहते हैं
अत्र—यहाँ पर
आरम्भे—आरम्भमें
नाशः,न, स्यात्—नाश नहीं होता
दृष्टान्तस्य, अपि—दृष्टान्तका भी

अभावतः—अभाव होनेके कारण
स्वास्थ्यहेतोः—स्वास्थ्यके कारणका
परित्यागात्—परित्यागके निमित्त
केन—किसके द्वारा
अस्य—इसका
बाधः—बाधकता
सम्भवेत्—सम्भावना है

भावार्थः—यहाँ भक्तिमार्गमें आरम्भ करते ही नाश नहीं होता है क्योंकि भक्तिमार्गमें किये हुये कर्मके नाश होनेके उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं फिर लौकिक स्वास्थ्यके कारणोंका परित्याग कहा है जिससे उनको बाधा अर्थात् अड़चन कौन करे सकता है ॥ १८ ॥

हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ।
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित् १९

पदच्छेदः—हरिः, अत्र, न, शक्नोति, कर्तुम्, बाधाम्, कुतः, अपरे । अन्यथा, मातरः, बालान्, न स्तन्यैः, पुपुषुः क्वचित् ॥१९॥

अत्र—इस विषयमें
हरिः—श्रीहरिभी
बाधाम्—बाधा (अड़चन)
कर्तुम्—करनेके लिये
न, शक्नोति—शक्तिमान नहींहोता
कुतः—किस प्रकार
अपरे—अन्य
अन्यथा—यदि ऐसा न हो
मातरः—माताएँ
बालान्—बालकोंको
क्वचित्—कोई भी स्थलमें
स्तन्यैः—स्तनके दूधसे
न, पुपुषुः—न पोषण करें

भावार्थः—यहाँ पर तो स्वयं श्रीहरि भी बाधा नहीं कर सकते हैं तब और दूसरेकी सामर्थ्य ही क्या है जोकि बाधा कर सके। यदि ऐसा न हो तो फिर माताएँ अपने प्रिय बालकोंको कभी अपने स्तन दुग्धपानके द्वारा पोषण न करें। १९॥

ज्ञाननामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति।
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति २०

पदच्छेद—ज्ञानिनाम्, अपि, वाक्येन, न, भक्तम्, मोहयिष्यति। आत्मप्रदः, प्रियः, च अपि, किम्, अर्थम्, मोहयिष्यति ॥२०॥

ज्ञानिनाम्—ज्ञानियोंका
वाक्येन, अपि—वाक्यसे भी
भक्तम्—भक्तको
न, मोहयिष्यति—मोह न कर सकेंगे
आत्मप्रदः, च—आत्माका दान करने वाले और
प्रियः, अपि—प्रिय भी हैं
किमर्थम्—किस प्रकार
मोहयिष्यति—मोहित करेंगे

भावार्थः—ज्ञानियोंके उपदेश वाक्योंसे प्रभु अपने भक्तको मोहमें नहीं डालते हैं क्योंकि वे हमको अपना स्वरूप दान करने वाले और प्रिय हैं वे भक्तको किसलिये मोहित करेंगे॥ २०॥

तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम्।
अन्यथा भ्रंश्यते स्वार्थादिति मे निश्चिता मतिः२१

पदच्छेदः—तस्मात्, उक्तप्रकारेण, परित्यागः, विधी-

यताम् । अन्यत्र, भ्रंश्यते, स्वार्थात्, इति, मे, निश्चिता, मतिः ॥२१॥

तस्मात्—इसलिये
उक्तप्रकारेण—ऊपर कहे हुए प्रकारसे
परित्यागः—संन्यास
विधीयताम्—करना चाहिये
अन्यथा—अन्यथा
स्वार्थात्—पुरुषार्थसे
भ्रंश्यते—नष्ट होता है।
इति, मे—इस प्रकार मेरी
मतिः—सम्मति
निश्चिता—निश्चय है

भावार्थः—अतएव उपरोक्त प्रकारसे संन्यासकी व्यवस्था कही है इसके विना अन्य प्रकारसे यदि कोई संन्यास ग्रहण करेगा तो वह अपने पुरुषार्थसे भ्रष्ट होगा, यह मेरी निश्चित सम्मति है ।२१।

इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम् ।
संन्यासवरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् ॥२२॥

पदच्छेदः—इति, कृष्णप्रसादेन, वल्लभेन, विनिश्चितम्। संन्यासवरणम्, भक्तौ, अन्यथा, पतितः, भवेत् ॥२२॥

इति—इस प्रकार
कृष्णप्रसादेन—श्रीकृष्णके अनुग्रहसे
वल्लभेन—श्रीभगवानके प्रियने (श्रीवल्लभाचार्यजीने)
भक्तौ—भक्तिमार्गमें
संन्यासवरणम्—संन्यासको अङ्गीकार
विनिश्चितम्—निश्चित किया है
अन्यथा—बिना आज्ञाके संन्यास ग्रहण करने पर
पतितः—पतित
भवेत्—होता है

भावार्थः--इस प्रकार श्रीकृष्णकी कृपासे श्रीमद्वल्लभाचार्य जी श्रीमहाप्रभुजीने अच्छी प्रकारसे विचार पूर्वक निश्चय किया हुआ भक्तोंके लिये संन्यासग्रहणका निरूपण किया है। यदि कोई इसके विपरित करेगा तो उसका पतन ही होगा ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितः संन्यास निर्णयः सम्पूर्णः ॥१४॥

१५-निरोधलक्षणम्

यच्च दुखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।
गोपिकानां तु यद्दुःखं तद्दुःखं स्यान्मम क्वचित्। १

पदच्छेदः—यत्, च, दुःखम्, यशोदायाः, नन्दादीनाम्, च, गोकुले। गोपिकानाम्, तु, यत्, दुःखम्, तत्, दुःखम्, मम, क्वचित् ॥१॥

गोकुले—गोकुलमें
यशोदायाः—यशोदाका आदिको
च, यत्—और जो
दुःखम्, च—दुःख और
गोपिकानाम्—गोपियोंको
च—और
नन्दादीनाम्—श्रीनन्दरायजीको
यत्, दुःखम्—जो दुःख हुआ
तत्, दुःखम्—वह दुःख
मम, क्वचित्—मुझको कभी
स्यात्—हो

भावार्थः—जब श्रीव्रजाधिप भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी मथुरा पुरीमें पधारे उस समय यशोदाजी और नन्द आदि गोकुलके सब व्रजवासियों और श्रीगोपीजनोंको जो दुःख हुआ था इस प्रकारका दुःख क्या मुझको भी कभी होगा ? ॥ १ ॥

गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति ।२।

पदच्छेदः—गोकुले, गोपिकानाम्, तु, सर्वेषाम्, व्रजवासिनाम् । तत्, सुखम्, समभूत्, तत्, मे, भगवान्, किम्, विधास्यति ॥२॥

गोकुले—श्रीगोकुलमें	**यत्, सुखम्**—जो सुख
गोपिकानाम्—श्रीगोपीजनोंको	**समभूत्**—सर्व प्रकारसे हुआ
तु, सर्वेषाम्—तो सब	**तत्, मे**—वह सुख मुझे
व्रजवासिनाम्—व्रजमें रहने वालोंको	**भगवान्, किम्**—हरि क्या ?
	विधास्यति—करेंगे ?

भावार्थः—गोकुलमें गोपिकाओं और समस्त व्रजवासियोंको जो प्रभुके साक्षात् स्वरूपानन्दका सुखानुभव हुआ था, क्या उसी प्रकारका सुख श्रीभगवान् मुझको भी प्रदान करेंगे ? ॥ २ ॥

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा ।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ॥३॥

पदच्छेदः—उद्धवागमने, जातः, उत्सवः, सुमहान्, यथा । वृन्दावने, गोकुले, वा, तथा, मे, मनसि, क्वचित् ॥३॥

वृन्दावने—श्रीवृन्दावनमें	**उद्धवागमने**—उद्धवजीके पधारने पर
वा—अथवा	**यथा**—जैसा
गोकुले—श्रीगोकुलमें	

सुमहान्—अत्यन्त विशाल
उत्सवः, जातः—उत्सव हुआ
तथा—वैसा
मे—मेरे
मनसि, क्वचित् मनमें किसी समय होगा ?

भावार्थः—भक्तप्रवर श्रीउद्धवजीके (मथुरापुरीसे) आने पर वृन्दावन और श्रीगोकुलमें जो महान् उत्सव अर्थात् समस्त व्रजवासियोंको जो अनन्त हर्ष हुआ था। इसी प्रकारका हर्ष क्या मेरे मनमें भी कभी उत्पन्न होगा ??॥ ३ ॥

महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति ।
तावदानन्दसन्दोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि ॥४॥

पदच्छेदः—महताम्, कृपया, यावत्, भगवान्, दययिष्यति। तावत्, आनन्दसंदोहः, कीर्त्यमानः सुखाय, हि॥४॥

महताम्—पूज्य पुरुषोंकी
कृपया, यावत्—कृपासे जबतक
भगवान्—भगवान्
दययिष्यति—दया करेंगे
तावत्—तबतक
कीर्त्यमानः—कीर्ति करने योग्य
आनन्दसंदोहः — आनन्द समुदाय
हि—निश्चय
सुखाय—सुखार्थ हो

भावार्थः—पूज्य गुरुजनोंकी परम कृपासे जब भगवान् गोकुलेन्दु दया करेंगे। तब तक अपने सुखके लिये आनन्दरूप प्रभुका कीर्तन करना ही परम सुखकर है ॥४॥

महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा ।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरुच्चवत् ॥५॥

पदच्छेदः—महताम्, कृपया, यद्वत्, कीर्तनम्, सुखदम्, सदा। न, तथा, लौकिकानाम्, तु, स्निग्धभोजनरूक्षवत् ॥५॥

यद्वत्—जिस प्रकार
महताम्—बड़े पुरुषोंकी
कृपया—कृपा से
कीर्तनम्—(भक्तों द्वारा लीलादिका विधि कीर्तन
सदा—सर्वश
सुखदम्—सुख देनेवाला है
तथा—उसी प्रकार।
लौकिकानाम्—लौकिक पुरुषोंका कीर्तन
तु, न—तो सुख नहीं देता
स्निग्धभोजनरुक्षवत्—घी सहित भोजन करनेवालेको जिस प्रकार शुष्क भोजन (सुख) नहीं देता

भावार्थः—बड़े पुरुषोंकी परम कृपासे भक्तों द्वारा लीला आदिका विधि कीर्तन सर्वदा सुखका अनुभव कराने वाला है। जिस प्रकार घृतसे स्निग्ध भोजन करनेवालेको शुष्क भोजन सुखप्रद नहीं होता। उसी प्रकार लौकिक पुरुषोंका कीर्तन तो कभी सुखप्रद नहीं हो सकता है। ५॥

गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यतः॥६॥

पदच्छेदः—गुणगाने, सुखावाप्तिः, गोविन्दस्य, प्रजायते, यथा, तथा, शुकादीनाम्, न, एव, आत्मनि, कुतः, अन्यतः ॥६॥

गोविन्दस्य—भगवानके
गुणगाने—गुणगान करनेमें
यथा—जिस प्रकार सुख
प्रजायते—होता है
तथा—उसी प्रकार सुख
शुकादीनाम्—श्रीशुकदेवजी आदि महानुभावोंको
आत्मनि—हृदयमें
न—नहीं होता
अन्यतः—ज्ञान और भक्तिके बिना दूसरे किसी हेतुसे
कुतः—कैसे होय ?

भावार्थ—श्रीगोविन्द भगवानका गुणगान करनेसे जो अनन्त सुख मिलता है। उस प्रकारका सुख तो शुकदेव आदि मुनीश्वरोंको आत्मानन्दमें भी कभी नहीं मिला। अब दूसरोंकी तो गणना ही क्या है ? ॥ ६ ॥

क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्।
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥७॥

पदच्छेदः—क्लिश्यमानान्, जनान्, दृष्ट्वा, कृपायुक्तः, यदा, भवेत्। तदा, सर्वम्, सदानन्दम्, हृदिस्थम्, निर्गतम्, बहिः ॥७॥

क्लिश्यमानान्—अपनी प्राप्तिके लिये क्लेश प्राप्त होते
जनान्—भक्तजनोंको
दृष्ट्वा, यदा—देखकर जब
सर्वम्—सर्वांश सम्पूर्ण
सदानन्दम्—परब्रह्म श्रीकृष्ण
कृपायुक्तः—कृपावाले
भवेत्, तदा—हो तब
हृदिस्थम्—हृदयमें स्थित
बहिः—बाहर
निर्गतम्—प्रगट हुए

भावार्थः—अपने भक्तोंको क्लेशयुक्त देखकर भक्तवत्सल भगवान् जब कृपायुक्त होते हैं। उस समय पूर्णतया सदा आनन्द स्वरूप प्रभु अपने हृदयसे स्वयं बाहर प्रकट होते हैं ॥७॥

सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः ।
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् ॥८॥

पदच्छेदः—सर्वानन्दमयस्य, अपि, कृपानन्दः, सुदुर्लभः । हृद्गतः, स्वगुणान्, श्रुत्वा, पूर्णः, प्लावयते, जनान् ॥८॥

सर्वानन्दमयस्य—सर्वानन्दमय श्री प्रभुका
अपि—भी
कृपानन्दः—कृपारूपी आनन्द
सुदुर्लभः—अत्यन्त दुर्लभ है
हृद्गतः—हृदयमें स्थित (प्रभु)
स्वगुणान्—अपने गुणोंको
श्रुत्वा—सुनकर
पूर्णः—कृपापूर्ण होकर
जनान्—भक्तजनोंको
प्लावयते—रससे पूर्ण करते हैं।

भावार्थः—सम्पूर्ण आनन्दमय प्रभुका कृपानन्द अत्यन्त दुर्लभ है। हृदय पंकजमें विराजमान होकर जब भगवान् अपने गुणोंको सुनते हैं। तब अपने भक्तको पूर्ण आनन्द सागरमें आप्लावित कर देते हैं ॥ ८ ॥

तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः ।
सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः ॥९॥

पदच्छेदः—तस्मात्, सर्वम्, परित्यज्य, निरुद्धैः, सर्वदा,

गुणाः । सदानन्दपरैः, गेयाः, सच्चिदानन्दता, ततः ॥९॥

तस्मात्—इसलिये (भावकी अपेक्षा प्रभुकीर्तनसे अधिक प्रसन्न होता है इससे)।

सर्वम्—सम्पूर्ण

परित्यज्य—त्यागकर

निरुद्धैः—प्रवञ्चविरमृति पूर्वक भगवदासक्ति युक्त होकर

सर्वदा—सदा

गुणाः—प्रभुके गुण

गेयाः—गान करना

सच्चिदानन्दता—अक्षर ब्रह्मता

स्वतः—इसीसे प्राप्त हैं।

भावार्थः—अतएव सदा आनन्द रूप प्रभुमें आसक्त पुरुषों-को समस्त लौकिक आसक्तियाँ छोड़कर चित्तको अवरोध करनेके लिये सदा प्रभुका गुणगान करना ही परमोचित है। ऐसा करनेसे सच्चिदानन्दता सिद्ध होती है अर्थात् सत्, चित् और आनन्द रूप प्रभु स्वयं प्रकट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।
निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥१०॥

पदच्छेदः—अहम्, निरुद्धः, रोधेन, निरोधपदवीम्, मे, गतः । निरुद्धानाम्, तु, रोधाय, निरोधम्, वर्णयामि ते ॥१०॥

रोधेन—संसर्गावेश रहित होकर, इन्द्रिय निग्रहकर

अहम्—मैं

निरुद्धः—भगवदासक्त हुआ हूँ

निरोधपदवीम्—निरोध मार्गको

गतः—प्राप्त हुआ हूँ

निरुद्धानाम्—संसारमें निरोध प्राप्त भक्तोंके

निरोधाय—निरोधके लिये
ते—तुम्हारे प्रति
निरोधम्—निरोधको
वर्णयामि—वर्णन करता हूँ

भावार्थः—मैं निरोधका अभिलाषी अवरोध करनेसे निरोध पदवीको प्राप्त हुआ हूँ, अब जो निरोधके अभिलाषी हैं उनके लिये निरोधका वर्णन किया जाता है ॥ १० ॥

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्त एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ॥ ११ ॥

पदच्छेदः—हरिणा, ये, विनिर्मुक्ताः, ते, मग्नाः, भवसागरे । ये, निरुद्धाः, ते, एव, अत्र, मोदम्, आयान्ति, अहर्निशम् ॥ ११ ॥

हरिणा—दुःखहर्त्ता श्रीहरिने
ये, विनिर्मुक्ताः—जो विशेषतया त्याग किये हुए हैं
ते, भवसागरे—वे भवसागरमें
मग्नाः, ये—डूब गये हैं, जो
निरुद्धाः—भगवानमें निरोध प्राप्त हैं उन्हें
एव, अत्र—ही गुणगानमें
अहर्निशम्—रात्रि दिन
मोदम्—आनन्द
आयान्ति—प्राप्त होता है

भावार्थः—श्रीहरिने जिनको त्याग रखा है वे समस्त प्राणी भवसागरमें निमग्न (डूबे हुए) हैं, और जिन भक्तजनोंका निरोध किया है वे यहाँ भगवत् सन्निधिमें प्रत्येक क्षण आनन्दमय रहते हैं ॥ ११ ॥

संसारावेशदुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वै ।

कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥१२॥

पदच्छेदः—संसारावेशदुष्टानाम्, इन्द्रियाणाम्, हिताय, वै, कृष्णस्य, सर्ववस्तूनि, भूम्नः, ईशस्य, योजयेत् ॥१२॥

संसारावेशदुष्टानाम्—संसारके आवेशसे दुष्ट हुए

इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियोंके

हिताय—हितके लिये

ईशस्य—(सर्वेन्द्रिय नियामक) ईश्वर

भूम्नः—सर्वत्र व्यापक

कृष्णस्य—श्रीकृष्णके लिये

सर्ववस्तूनि—सर्ववस्तु

वै—निश्चय ही

योजयेत्—लगा दे

भावार्थः—सांसारिक कामोंमें लगी हुई दुष्ट इन्द्रियोंके हितके लिये समस्त वस्तुओंका श्रीजगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ सम्बन्ध कर देना ही सर्वोत्तम है ॥ १२ ॥

गुणेष्वाविष्टचित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः ।
संसारविरहक्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥१३॥

पदच्छेदः—गुणेषु, आविष्टचित्तानाम्, सर्वदा, मुरवैरिणः, संसारविरहक्लेशौ, न, स्याताम्, हरिवत्, सुखम् ॥१३॥

मुरवैरिणः—मुरनामक दैत्यके शत्रु श्रीभगवानके

गुणेषु—श्री रासलीलादि गुणोंमें

सर्वदा—सर्वदा

आविष्टचित्तानाम्—एकतान चित्तवाले भक्तोंको

संसारविरहक्लेशौ—अहंताममतात्मक क्लेश और प्रभु विरहसे क्लेश ये उभय

न, स्याताम्—नहीं होते उन्हें

हरिवत्—प्रभुके सदृश

सुखम्—सुख होता है

भावार्थः—जिनके चित्तमें भगवान् मुरारिके गुणोंका सुख भराहुआ है उनके लिये सांसारिक विरह तथा क्लेशका कुछ भी भान नहीं होता है अर्थात् वे श्रीहरिके तुल्य सर्वदा सुखमय रहते हैं ॥ १३ ॥

तदा भवेद् दयालुत्वमन्यथा क्रूरता मता ।
बाधशङ्कापि नास्त्यत्र तदध्यासोपि सिध्यति ॥१४॥

पदच्छेदः—तदा, भवेत्, दयालुत्वम्, अन्यथा, क्रूरता, मता । बाधशङ्का, अपि, न, अस्ति, अत्र, तत्, अध्यासः, अपि, सिद्ध्यति ॥१४॥

तदा—ऊपरोक्त प्रकार होने पर	**बाधशंका**—निरोधमेंसे पतित होने की शंका
दयालुत्वम्—दयालुता	**अपि, न, अस्ति**—भी नहीं है
अन्यथा—चित्तमें प्रभुगुण न आवेंतः	**तदध्यासः**—भगवदासक्ति
अक्रूरता अघातकता है	**सिद्ध्यति**—सिद्ध होती है
मता, अत्र समझाया है, यहाँ	

भावार्थः—इसीको दयालुपन कहते हैं । नहीं तो इसके विरुद्धको तो क्रूरता ही माना है। यहाँ पर बाधाओंकी तो आशंका भी उत्पन्न नहीं हो सकती और असाध्य हो वह भी सिद्ध हो जाता है अर्थात् अनायास ही प्रभुका स्मरण सफल हो जाता है ॥ १४ ॥

भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विरागो विषये स्थिरः ।
गुणैर्हरेः सुखस्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित् ॥१५॥

पदच्छेदः—भगवद्धर्मसामर्थ्यात्, विरागः, विषये,

स्थिरः । गुणैः, हरेः सुखस्पर्शात् न, दुःखम्, भाति, कर्हि-चित् ॥१५॥

भगवद्धर्मसामर्थ्यात्—भगवानके धर्मकी सामर्थ्यसे
विषये—विषयोंमें
विरागः—वैराग्य
स्थिरः—स्थिर होता है
गुणैः—प्रभु गुणगानसे
हरेः, सुखस्पर्शात्—श्रीप्रभुके सुखका स्पर्श होनेसे
दुःखम्—दुःख
कर्हिचित्—किसी भी समय
न, भाति—नहीं मालूम होता

भावार्थः—श्रीभगवानके प्रतापसे विषयोंमें स्थिर विराग उत्पन्न हो जाता है। प्रभुके गुणोंके सुखका अनुभव होनेपर किसी समयमें भी दुःखकी प्रतीति नहीं हो सकती है ॥१५॥

एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गादुत्कर्षो गुणवर्णने ।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीया सदा गुणाः ॥१६॥

पदच्छेदः एवम्, ज्ञात्वा, ज्ञानमार्गात्, उत्कर्षः, गुणवर्णने । अमत्सरैः, अलुब्धैः, च, वर्णनीयाः, सदा, गुणाः ॥१६॥

एवम्—इस प्रकार
ज्ञानमार्गात्—ज्ञानमार्गसे
उत्कर्षम्—उत्कर्ष
ज्ञात्वा—जानकर
अमत्सरैः—ईर्ष्या त्यागकर
अलुब्धैः—लोभ रहित होकर
सदा—सर्वदा
गुणाः—प्रभुके गुण
वर्णनीयाः—वर्णन करना

भावार्थः—इस प्रकार ज्ञानमार्गसे परमश्रेष्ठ भगवद्गुणगान-को मानकर द्वेष और लोभ रहित होकर सदैव प्रभुका गुणगान करना ही सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

हरिमूर्तिः सदा ध्येया सङ्कल्पादपि तत्र हि ।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा ॥१७॥

पदच्छेदः हरिमूर्तिः, सदा, ध्येया, संकल्पात्, अपि, तत्र, हि । दर्शनम्, स्पर्शनम्, स्पष्टम्, तथा, कृति-गती, सदा ॥१७॥

हरिमूर्तिः—श्रीभगवान्की मूर्ति
सदा—सदा
ध्येया—ध्यान करनी
हि—क्योंकि
संकल्पात्—संकल्पमात्र
तत्र, सदा—मूर्तिमें निरन्तर
दर्शनम्—दर्शन
स्पर्शनम्—स्पर्श करना
स्पष्टम्—स्पष्ट होता है
तथा—उसी प्रकार
कृतिगती—हाथ पैरोंके काम

भावार्थः—जिस प्रकार श्रीहरिके स्वरूपका दर्शन तथा सस्पर्श करते हैं उसी प्रकार संकल्प द्वारा भी सदैव मानस पङ्कजमें ध्यान करना चाहिये ॥ १७ ॥

श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः ।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् ॥१८॥

पदच्छेदः-श्रवणम्, कीर्तनम्, स्पष्टम्, पुत्रे, कृष्णप्रिये, रतिः । पायोः, मलांशत्यागेन, शेषभागम्, तनौ, नयेत् १८

श्रवणम्—श्रवण
कीर्तनम्,स्पष्टम्—कीर्तन स्पष्ट
पुत्रे—पुत्र कामनामें
कृष्णाप्रिये—कृष्ण प्रिय होय तो
रतिः—स्वस्त्रीसे प्रीति करना
पायोः—गुदेन्द्रियका कार्य
मलांशत्यागेन-मलांशकेत्यागद्वारा
तनौ—भगवानमें–विनियोग किये शरीरमें
शेषभागम्—गौणभावको
नयेत्—प्राप्त करना

भावार्थः—श्रवण और कीर्तन स्पष्ट रूपसे करना चाहिये, और पुत्र भी भगवान् कृष्णका भक्त होगा। इस भावसे अपनी स्त्रीके साथ सहवास करना चाहिये। केवल गुदा इन्द्रिय मलांश त्यागनेका स्थान छोड़कर शरीरकी समस्त इन्द्रियोंको भगवत् सेवामें लगाना चाहिये॥ १८॥

यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः॥१९॥

पदच्छेदः यस्य, वा, भगवत्कार्यम्, यदा, स्पष्टम्, न, दृश्यते। तदा, विनिग्रहः, तस्य, कर्तव्यः, इति, निश्चयः॥१९॥

यदा—जब
यस्य—जिस मनुष्यका
भगवत्कार्यम्—भगवत सम्बन्धी कार्य
स्पष्टम्—स्पष्टरूपसे
न, दृश्यते—नहीं दीखता है
तदा, तस्य—तब उस
विनिग्रहः—इन्द्रियदमनादि कार्य
कर्तव्यह—करने योग्य है
इति—इस प्रकार
निश्चयः—निश्चय है।

भावार्थः—जिस इन्द्रियका भगवत् सेवा कार्यमें उपयोग नहीं होता होय उसको निग्रह अर्थात् अवरोध करके अवश्य ही उसे भगवत् कार्यमें लगाना चायिये ॥ १६ ॥

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात् परम् ॥ २० ॥

पदच्छेदः—न अतः परतरः, मन्त्रः न, अतः, परतरः, स्तवः । न अतः परतरा विद्या तीर्थम् न अतः परात् परम् ॥२०॥

अतः, परतरः—इससे आगे	विद्या, न—विद्या नहीं है
मन्त्रः, न—मन्त्र नहीं है	अतः, परात्—इससे आगे
अतः, परतरः—इससे आगे	परम्,—उत्तम
स्तवः न—स्तुति (स्तोत्र) नहीं है	तीर्थम्—तीर्थ
अतः, परतरा—इससे अच्छी	न—नहीं है ।

भावार्थः—अतएव पराभक्तिसे बढ़कर न तो कोई मन्त्र है, न कोई स्तोत्र ही हैं न कोई विद्या ही है, और न कोई तीर्थ ही है ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम् ॥ १५ ॥

१६—सेवाफलम्

यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते ।
अलौकिकस्य दाने हि चायः सिध्येन् मनोरथः ॥ १ ॥

फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामकः।
उद्वेगः प्रतिबन्धो वा भोगो वा स्यात् तु बाधकम्॥२॥

पदच्छेदः—यादृशी, सेवना, तत्सिद्धौ, फलम्, उच्यते। अलौकिकस्य, दाने, हि, च, आद्यः, सिध्येत्, मनोरथः। फलम्, वा, हि, अधिकारः, न, कालः, अत्र, नियामकः। उद्वेगः, प्रतिबन्धः, वा, भोगः, वा, स्यात्, तु, बाधकम्॥ २॥

यादृशी जिसप्रकारकी	**फलम्** फल प्राप्त होना
सेवना सेवा	**वा** अथवा
प्रोक्ता—कही गयी है	**अधिकारः**—अधिकार प्राप्त होना
तत्सिद्धौ—उसकी सिद्धिके विषयमें	**अत्र** यहाँ इस विषयमें
फलम्—फलको	**कालः**—काला
उच्यते, च - कहे हैं और	**नियमाकः, न**-नियामक नहीं है
अलौकिकस्य—अलौकिकके	**उद्वेगः** उद्वेग
दाने हि—दानमें भी	**प्रतिबन्धः** प्रतिबन्ध
आद्यः—प्रथम	**वा, भोगः** अथवा भोग
मनोरथः मनोरथ	**बाधकः** विघ्नकर्त्ता
सिध्येत् सिद्ध होता है।	**स्यात्** होता है।

भावार्थः—जिस प्रकार सेवा बतायी गयी है उसकी सिद्धके लिये अब फल को कहते हैं और अलौकिकके दानमें प्रथम मनोरथ सिद्ध होता है उसका फल प्राप्त होनेमें अथवा अधिकार प्राप्त होनेमें यहाँ पर कालको नियामक नहीं माना है। उद्वेग और प्रतिबन्ध अथवा भोग ये सेवामें विघ्न करनेवाले हैं॥ २॥

अकर्तव्यं भगवतः सर्वथा चेद् गतिर्न हि ।
यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम् ॥३॥

पदच्छेदः—अकर्तव्यम्, भगवतः, सर्वथा, चेत्, गतिः, न, हि । यथा, वा, तत्त्वनिर्धारः, विवेकः, साधनम्, मतम् ॥३॥

भगवतः, चेत्—भगवानको यदि
सर्वथा—सब प्रकार से
अकर्तव्यः—फलका दान न करना हो तब
गति, नहि—उपाय नहीं है
यथा – जिस प्रकार
तत्त्वनिर्द्धारः—प्रमाणके तत्व निश्चयको
वा—अथवा
विवेकः—विवेकको
साधनम्—साधन
मतम्—माना है।

भावार्थः—यदि भगवानको सब प्रकारसे फलका दान न करना हो तब उपाय ही नहीं है। यहाँ पर प्रमाण तत्वके निश्चयको अथवा विवेकको ही साधन माना है ॥ ३ ॥

बाधकानां परित्यागो भोगेप्येकं तथा परम्।
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा ॥४॥

पदच्छेदः—बाधकानाम्, परित्यागः, भोगे, अपि, एकम्, तथा, अपरम् । निष्प्रत्यूहम्, महान् भोगः, प्रथमे, विशते, सदा ॥ ४ ॥

बाधकानाम्—सेवामें विघ्न करने वालों का
परित्यागः—परित्याग करना
तथा—उसी प्रकार
भोगे, अपि—भोगमें भी
एकम्—एकका परित्याग करना
अपरम्—दूसरे कानहीं

निष्प्रत्यूहम्--निसन्देह
महान्--महा अलौकिक
भोगः--भोग
प्रथमे—प्रथम फलमें
सदा—सदैव
विशते—प्रविष्ट होता है

भावार्थः--सेवामें विघ्न करनेवाले समस्त कारणोंका परित्याग करना उचित है। लौकिक और अलौकिक दो प्रकारके भोगमें से एक लौकिक भोगका परित्याग करना उचित है इसी प्रकार सेवामेंलोक कृत प्रतिबन्ध और भगवत्कृत प्रतिबन्धमेंसे लौकिक प्रतिबन्धका त्याग करना उचित है। महान् भोग अर्थात् अलौकिक भोग सेवामें अन्तराय रूप नहीं है क्योंकि वह अलौकिक भोग फलान्तरगत है ॥ ४ ॥

सविघ्नोऽल्पो घातकः स्याद् बलादेतौ सदा मतौ।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् ॥५॥

पदच्छेदः—सविघ्नः, अल्पः, घातकः, स्यात् बलात्, एतौ सदा, मतौ। द्वितीये, सर्वथा, चिन्ता, त्याज्या, संसार-निश्चयात् ॥ ५ ॥

सविघ्नः-लौकिकभोग विघ्नसहित है
अल्पः—स्वल्प
च, घातक.—और घातक
स्यात्—होता है
बलात्—बलपूर्वक (घातक)
एतौ, सदा—ये सदैव
मतौ—माने हुये हैं
द्वितीये—दोनोंके विषयमें
संसारनिश्चयात्—संसार होना निश्चय है इसलिए
सर्वथा—सब प्रकारसे
चिन्ता—चिन्ता
त्याज्या-त्याग करना उचित है

भावार्थः--लौकिक भोग अनेक प्रकारसे विघ्न वाले हैं एवं अल्प तथा घातक हैं। वे दोनों अर्थात् लौकिक भोग और लोककृत प्रतिबन्ध सेवा फलमें अन्तराय करनेवाले माने गये हैं। इन दोनोंके प्रबल होनेमें अहन्ता ममतात्मक संसारमें स्थिति निश्चित है यह समझ कर सर्वविध चिन्ता परित्याग करना योग्य है ॥ ५ ॥

नन्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम्।
अवश्येयं सदा भाव्यं सर्वमन्यत् मनोभ्रमः ॥६॥

पदच्छेदः—ननु, आद्ये, दातृता, न, अस्ति, तृतीये, बाधकम्, गृहम्। अवश्य, इयम्, सदा, भाव्या, सर्वम् अन्यत् मनोभ्रमः ॥ ६ ॥

न, तु, आद्ये—निश्चय प्रथम प्रतिबन्ध उद्वेगमें
दातृता—भगवानको फल देने की इच्छा
न, अस्ति—नहीं है
तृतीये—तीसरे (विघ्न करने वाले लौकिकभोगमें)
गृहम्—घर
बाधकम्—विघ्नरूप है
इयम्, अवश्या—यह अवश्य
सदा—सदैव
भाव्या—विचार करने योग्य है
अन्यत्, सर्वम्—और सब कुछ
मनोभ्रमः—मनकी भ्रान्ति है

भावार्थः--सेवामें उद्वेग होने पर समझ लेना चाहिये कि फल देनेकी भगवानकी इच्छा नहीं है और तृतीय विषय भोगमें घर विघ्न रूप है जो हमने कहा है। अवश्य यह विचारने योग्य है इसके अतिरिक्त सब मनकी भ्रान्ति है ॥ ६ ॥

तदीयैरपि तत् कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत्।

गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यमेतदेवेति मे मतिः ॥
कुसृष्टिरत्र वा काचिदुत्पद्येत स वै भ्रमः ॥७॥

पदच्छेदः—तदीयैः, अपि, तत्, कार्यम्, पुष्टौ न, एव, विलम्बयेत् । गुणक्षोभे, अपि, द्रष्टव्यम्, एतत्, एव, इति, मे, मतिः । कुसृष्टिः, अत्र, वा, काचित्, उत्पद्येत्, सः, वै, भ्रमः ॥ ७½ ॥

तदीयैः, अपि—तदियजनोंने भी
तत्—तदनुसार
कार्यम्—कार्य करना
पुष्टि—पुष्टिमें
न, विलम्बयेत्—विलम्ब नकरे
गुणक्षोभे, अपि—गुणक्षोभमें भी
द्रष्टव्यम्—देखना चाहिये
एतत्, एव—यह ही
मे—मेरी (श्रीवल्लभाचार्यजीकी)
इति, मतिः — इस प्रकारकी सम्मति है ।
अत्र—यहाँ पर
कुसृष्टिः, वा—कुसृष्टि अथवा
काचित्—कोई
उत्पद्येत—उत्पन्न होय
सः, वै—वह निश्चयही
भ्रमः—भ्रम (भ्रान्ति) है ।

भावार्थः—यदि भगवदीयजन ऐसा करेंगे तो भगवत् कृपामें विलम्ब नहीं होगा । गुणोंके कारण क्षोभ होने पर भी ऐसा ही विचार रखना यह मेरी श्रीवल्लभाचार्यजीकी सम्मति है । यहाँ पर किसी प्रकारकी कुसृष्टि उत्पन्न हो यह भ्रम (भ्रान्ति) है ॥७½॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम् ॥ १६ ॥

षोडशग्रन्थ स्वाध्याय

श्रीमन्महाप्रभु विरचित षोडशग्रन्थ, सुप्रसिद्ध है। हम अपने लिए इन षोडशग्रन्थोंको एक प्रकारसे श्रीवल्लभगीता मानते हैं। जिस प्रकार श्रीभगवद्गीताके अष्टादश अध्याय हैं इसी प्रकार इस श्रीवल्लभगीताके भी षोड़श अध्यायके रूपमें ये षोडश ग्रन्थ हैं। प्रत्येक वैष्णव इन ग्रन्थोंका नित्यकर्मके साथ पाठ करते है और भगवत्सेवा क्रममें भी इन षोडशग्रन्थोंमेंसे कुछ ग्रन्थोंका पाठ करना आवश्यक माना है। सम्प्रदायकी रीतिके अनुसार जबतक वैष्णव षोडश ग्रन्थका मूलपाठ नहीं कर सकता है वह भगवत्सेवाका पूर्णाधिकारी नहीं हो सकता है, जो बात सेवा भावना तथा सेवाविधि सम्बन्धी ग्रन्थोंसे सुस्पष्ट है।

श्रीमन्महाप्रभु विरचित इन षोडशग्रन्थोंपर श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसाँईजीने टीका लिखनेका प्रारंभ किया और उनकी पूर्त्ति आपके सुयोग्य कुमारोंने की हैं। श्रीयमुनाष्टकसे प्रारंभ कर सेवाफल पर्यन्तके इन षोडशग्रन्थोंपर सम्प्रदायके प्रायः सभी विद्वान् गोस्वामिकुमारोंने संस्कृतभाषामें टीकायें लिखी हैं। इनमें से जिन जिन ग्रन्थोंपर जिन जिन विद्वान् गोस्वामिकुमारोंकी टीकाएँ उपलब्ध हुईं, उन उनका प्रकाशन करने का प्रारंभ कर हमारे पूज्यपाद आचार्य वंशजोंने तथा अनुयायी विद्वानोंने हमारे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह किया है। षोडशग्रन्थके स्वाध्याय करनेके अवसर पर इन संस्कृत टीकाओंसे हमें बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो रही है।

श्रीषोडशग्रन्थोंके अन्दर सब मिलाकर २२१॥ श्लोक हैं षोडशग्रन्थके एक एक ग्रन्थको क्रम पूर्वक कण्ठस्थ करनेके लिए यदि नित्यप्रति दो श्लोक भी कण्ठस्थ करनेका क्रम निश्चितकर षोडश ग्रन्थका स्वाध्याय किया जाय तो १११ दिनमें सम्पूर्ण

षोडश ग्रन्थ कण्ठस्थ किया जा सकता है। इस प्रकार यह क्रम चारमासके लिए निश्चित करके साम्प्रदायिक पाठशालाओंमें, वैष्णव मण्डलियोंमें तथा वैष्णव कुटुम्बोंमें छोटे बड़े सब किसी को षोड़शग्रन्थ कण्ठस्थ करनेकी प्रथम प्रेरणा करनी चाहिये और चारमासके अन्तमें केवल मूल षोडशग्रन्थ कण्ठाग्र करने-वालोंकी परीक्षा लेनी चाहिये। परीक्षामें उत्तीर्ण व्यक्तियोंको गोस्वामिबालकोंके हस्ताक्षरसे आशीर्वादपत्र प्रमाणपत्रके रूपमें देनेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

हमारी समझमें अनेक वैष्णवोंको इनमेंसे कुछ ग्रन्थ कण्ठाग्र होंगे और कुछ ग्रन्थ कण्ठाग्र करके श्रीमहाप्रभुजीके आगामी उत्सव पर्यन्त इस परीक्षाका का दिन निश्चित कर प्रत्येक वैष्णव मन्डलीके अग्रसर तथा पाठशालाके अध्यापकोंको इस विषयकी सूचना अभीसे देनी चाहिये। हमारा यह निश्चित सिद्धान्त है कि इस प्रकार चार मासमें षोडशग्रन्थ कण्ठाग्र हो जानेके पश्चात् इसके अन्वय पुरस्सर अर्थ ज्ञानके लिए और चारमास लगानेसे प्रत्येक ग्रन्थका अर्थ ज्ञान वैष्णवोंको सहजमें हो जायगा। इतना कार्य हो जाने पर प्रत्येक नगरमें एकमास अथवा दोमासके लिये किसी साम्प्रदायिक विद्वान्के द्वारा संस्कृत टीकाओंके आधारसे प्रवचनकी व्यवस्था करनी चाहिये। अथवा हिन्दी भाषामें और गुजराती भाषामें लिखे हुए विस्तृत विवेचनकी सहायता लेकर एक २ ग्रन्थपर स्वाध्याय पद्धतिसे व्याख्यानकी योजना करनेसे वैष्णव समाजमें षोडशग्रन्थका अर्थात् श्रीवल्लभगीताका स्वाध्याय सम्यक हो सकेगा।

दैवोद्धारप्रयत्नामा श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने अपने सिद्धान्तको अथवा उपदेशको समझानेके लिए अणुभाष्य निबन्ध सुबोधिनी प्रभृति बड़े ग्रन्थोंको लिखनेके साथ ही उन ग्रन्थोंमें समझाये हुए सारको अपने आश्रितजनोंके कल्याणके लिए स्पष्ट

करनेके निमित्त इन षोडशग्रन्थोंकी रचनाकी है। इनमेंसे कई ग्रन्थ कुछ वैष्णवोंकी प्रार्थनासे अथवा उनके हितार्थकी है; जिस प्रकार बालबोध और सिद्धान्त मुक्तावली परमत और स्वमतको स्पष्ट करनेके लिए काशीके परम भगवदीय सेठ पुरुषोत्तम दासजीकी प्रार्थनासे लिख देनेकी कृपा की है। और गोविन्द दूबेकी चिन्ता निवृत्तिके लिए नवरत्न ग्रन्थकी रचनाकी है इन ग्रन्थोंमेंसे कुछ सिद्धान्त बोधक है, कुछ ग्रन्थ स्तुत्यात्मक है और कुछ ग्रन्थ दैन्यभावकी शिक्षा देनेके लिए। अतः श्रीवल्लभानुयायी प्रत्येक सज्जन इन षोडशग्रन्थोंका परम श्रद्धा और लगनके साथ स्वाध्याय करनेमें प्रवृत्त हों यह सानुनय सादर उनके समीप प्रार्थना है।

श्रीमद्वल्लभाचार्य विरचित षोड़शग्रन्थ

श्रीवल्लभगीता

श्रीमन्महाप्रभु विरचित षोड़शग्रन्थ षोड़शाध्याती श्रीवल्लभगीता है। इस गीताका प्रचार सम्प्रदायमें है, किन्तु इस गीताका प्रचार गीताप्रेसके गीताप्रचारके आदर्शपर करनेकी हमने एक योजना की है, जिसका प्रारंभ 'श्रीकृष्ण' कार्यालयने किया है, किन्तु इस महान् कार्यके लिये पूज्यपाद आचार्यवंशजोंका आशीर्वाद, साम्प्रदायिक संस्थाओं और विद्वानोंका सहकार और श्रीमान् वैष्णवोंकी वित्तजा सेवाका विनियोग अपेक्षित है। 'श्रीकृष्ण' कार्यालयके पास इस समय जो साहित्य तैयार हैं उसको मँगवाकर तथा इसके विविध संस्करण अधिक संख्यामें प्रकाशनके लिए "षोड़शग्रन्थ प्रचार विभाग" को विशेष आर्थिक सहायता प्रदानकर हिन्दी भाषामें सिद्धान्त प्रचारक इस संस्थाको स्थायी बनावें।

षोड़शग्रन्थकी तैयार पुस्तकें

१—षोड़शग्रन्थ एवं विविध स्तोत्राणि इस ग्रन्थमें श्रीमहाप्रभु-

विरचित मूल षोड़शग्रन्थोंके उपरान्त मंगलाचरण, श्रीसर्वोत्तम स्तोत्र, श्रीवल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्ण प्रेमामृत स्तोत्र, शिक्षाश्लोक, गोपीगीत, मधुराष्टक, नन्दकुमाराष्टक प्रभृति अनेक स्तोत्र दिये गये हैं। चतुर्थ संस्करण पृष्ठ सं० ८० न्यौछावर ।=)।

२—षोड़शग्रन्थ सरल हिन्दी भावार्थ सहित सचित्र पृष्ठ संख्या ८० न्यौ० ॥)

३—षोड़शग्रन्थ मूल, पदच्छेद, अन्वयार्थ एवं भावार्थ सहित द्वितीय संस्करण पृष्ठ संख्या १६० न्यौ० १॥)

विशेष निवेदन—षोड़शग्रन्थके सविस्तर विवेचनका प्रकाशन शीघ्र ही होगा। अभी 'श्रीकृष्ण' मासिक पत्रके अष्टम वर्षकी प्रथमसंख्यामें 'कृष्णाश्रयस्तोत्र' का विवेचन और द्वितीय संख्यामें 'सिद्धान्त रहस्य' का विवेचन प्रकाशित हुआ है। तदनुसार 'श्रीकृष्ण' मासिक पत्रमें अन्य ग्रन्थोंका भी विवेचन प्रकाशित किया जायगा।

व्यवस्थापक—

श्रीकृष्ण कार्यालय

परमानन्द भवन, ३५।१३ जंगमवाड़ी काशी।

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी महाप्रभुजी विरचितम्

श्रीसुदर्शनकवचम्

वैष्णवानां हि रक्षार्थं श्रीवल्लभनिरूपितः ।
सुदर्शनमहामन्त्रो वैष्णवानां हितावहः ॥१॥
मन्त्रा मध्ये निरूप्यन्ते चक्राकारं च लिख्यते ।
उत्तरागर्भरक्षाच परिचितहिते रतः ॥२॥
ब्रह्मास्त्रवारणं चैव भक्तानां भयभंजनः ।
वधं च दुष्टदैत्यानां खंडं खंडं च कारयेत् ॥३॥
वैष्णवानां हितार्थाय चक्रं धारयते हरिः ।
पीताम्बरो परब्रह्म वनमाली गदाधरः ॥४॥
कोटिकन्दर्पलावण्यो गोपिकाप्राणवल्लभः ।
श्रीवल्लभःकृपानाथो गिरिधरः शत्रुमर्दनः ॥५॥
दावाग्निदर्पहर्ता च गोपीनां भयनाशनः ।
गोपालो गोपकन्याभिः समावृत्तोऽधितिष्ठते ॥६॥
व्रजमंडलप्रकाशी च कालिंदीविरहानलः ।
स्वरूपानन्ददानार्थं तापनोत्तरभावनः ॥७॥
निकुंजविहारभावाग्ने देहि मे निजदर्शनम् ।
गोगोपिकाश्रुताकीर्णो वेणुवादनतत्परः ॥८॥
कामरूपीकलावांश्च कामिन्यां कामदो विभुः ।

मन्मथोमथुरानाथो माधवो मकरध्वजः ॥९॥
श्रीधरःश्रीकरश्चैव श्रीनिवासः सतांगतिः ।
मुक्तिदो भुक्तिदो विष्णुःभूधरो भूतभावनः ॥१०॥
सर्वदुःखहरो वीरो दुष्टदानवनाशकः ।
श्रीनृसिंहोमहाविष्णुःश्रीनिवासःसतांगतिः ॥११॥
चिदानन्दमयो नित्यः पूर्णब्रह्म सनातनः ।
कोटिभानुप्रकाशी च कोटिलीलाप्रकाशवान् ।१२।
भक्तप्रियः पद्मनेत्रो भक्तानां वांछितप्रदः ।
हृदि कृष्णो मुखे कृष्णो नेत्रे कृष्णश्च कर्णयोः१३
भक्तिप्रियश्च श्रीकृष्णः सर्वं कृष्णमयं जगत् ।
कालं मृत्युं यमं दूतं भूतं प्रेतं च प्रपूयते ।१४।

ॐ नमो भगवते महाप्रतापाय महाविभूतिपतये वज्रदेहवज्रकाय वज्रतुंड वज्रनख वज्रमुख वज्रबाहु वज्रनेत्र वज्रदंत वज्रकरकमठ भूमात्मकराय श्रीमकरपिंगलाक्ष उग्रप्रलय कालाग्निरौद्रवीर भद्रावतार पूर्णब्रह्म परमात्मने ऋषिमुनिवंद्य शिवास्त्रब्रह्मास्त्रवैष्णवास्त्र नारायणास्त्र कालशक्ति कालदण्डकालपाश अघोरास्त्र निवारणाय पाशुपतास्त्र मृडास्त्र सर्वशक्ति परास्तकराय परविद्या निवारण आदिदीप्ताय अथर्ववेदऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद सिद्धकराय निराहाराय वायुवेग

मनोवेग श्रीबालकृष्णः प्रतिष्ठानंदकरः स्थल जलाग्निगमे मतोत्भेदि भेदि सर्वशत्रु छेदि छेदि ममवैरिन्खादयोत्खादय संजीवन पर्वतोच्चाट्य चाट्यडाकिनी शाकिनी विध्वंसकराय महाप्रतापाय निजलीलाप्रदर्शकाय निष्कलङ्ककृत् नन्दकुमारबटुक ब्रह्मचारी निकुञ्जस्थभक्तस्नेहकराय दुष्टजनस्तंभनाय सर्वपापग्रहकुमार्गग्रहान् छेदय छेदय भिन्दिभिन्दि खादयसकंटकान्ताडयताडय मारय मारय शोषय शोषय ज्वालय संहारय संहारय (देवदत्त) नाशय नाशय अति शोषय शोषय मम सर्वत्र रक्ष रक्ष महापुरुषाय सर्व दुःखविनाशनाय ग्रहमंडल भूतमंडल प्रेतमंडल पिशाचमडल उच्चाटन उच्चाटनाय अंतरभवादिकज्वर माहेश्वरज्वर वैष्णवज्वर ब्रह्मज्वर विषमज्वर शीतज्वर वातज्वर कफज्वर एकाहिक द्वाहिकत्र्याहिक चातुर्थिकअर्द्धमासिक मासिक षाणमासिक सवत्सरादिकर भ्रमिभ्रमि छेदय छेदय भिन्दि भिन्दि महाबल पराक्रमाय महाविपत्ति निवारणाय भक्तजनकल्पना कल्पद्रुमायदुष्टजन मनोरथस्तंभनाय क्लीं कृष्णाय गोविंदायगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ पिशाचान् राक्षासान् चैव हृदिरोगाँश्च दारुणान् । भूचरान्

खेचरान् सर्व डाकिनी शाकिनी तथा ॥१५॥
नाटकं चेटकं चैव छलछिद्रं न दृश्यते ।
अकाले मरणं तस्यशोकदोषो न लभ्यते ॥१६॥
सर्वविघ्नक्षयं यान्ति रक्ष मे गोपिकाप्रियः ।
भयंदावाग्निचौराणां विग्रहे राजसंकटे ॥१७॥
व्याल व्याघ्र महा शत्रुवैरिबंधो न लभ्यते ।
आधिव्याधिहरश्चैव ग्रहपीडाविनाशने ॥१८॥
संग्रामजयदस्तस्माद्ध्यायेदेवंसुदर्शनम् ॥
सप्तादश इमे श्लोका यंत्रमध्ये च लिख्यते ।
वैष्णवानां इदं यंत्रं अन्येभ्यश्च न दीयते ॥
वंशवृद्धिर्भवेत्तस्य श्रोता च फलमाप्नुयात् ।
सुदर्शनमहामंत्रो लभते जयमङ्गलम् ॥

सर्वदुःखहरश्चेदं अङ्गशूलअक्षशूल उदरशूल गुदशूल कटिशूल कुक्षिशूल जानुशूल जंघशूल हस्तशूल पादशूल वायुशूलस्तनशूल सर्वशूलात् निर्मूलय दानवदैत्य कामिनि वेताल ब्रह्मराक्षस कालाहल अनन्त वासुकी तक्षक कर्कोट कालीय स्थलरोग जलरोग नागपाश कालपाश विषं निर्विषं कृष्ण त्वामहं शरणागतः । वैष्णवार्थं कृतं यत्र श्रीवल्लभनिरूपितम् ॥

❀ इति श्रीवल्लभाचार्यकृतं सुदर्शनकवचं सम्पूर्णम् ❀

'श्रीकृष्ण' मासिक पत्र

हिन्दीभाषामें शुद्धाद्वैत सम्प्रदायका यह एकमात्र मासिकपत्र गत आठ वर्षसे प्रकाशित हो रहा है। जिसमें साम्प्रदायिक ग्रन्थोंका हिन्दी भाषान्तर एवं वैष्णवोपयोगी विविध लेख तथा कवितादि प्रकाशित होते हैं। वर्षारम्भ भाद्रपदमाससे होता है। एक वर्षमें बारह संख्यायें पोस्टेज सहित वार्षिक ४) में दीजाती हैं पुष्टिमार्गीय प्रत्येक वैष्णवको इस पत्रके ग्राहक बनकर घरबैठे सत्संगका लाभ उठाना चाहिये।

श्रीसुबोधिनीजी

श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित श्रीमद्भागवतकी संस्कृतटीका श्रीसुबोधिनीजी नामसे विख्यात है। उनका सरल हिन्दी भाषान्तर ग्रन्थमालाके आकारमें नियमित प्रकाशित होरहा है। उत्तम कागज तथा छपाई। बड़े आकारके ४०० पृष्ठ एक वर्षमें प्रकाशित करनेकी व्यवस्था है। वार्षिक न्यौछावर पोस्टेज सहित ६)। गोपीगीत तथा युगलगीत श्रीसुबोधिनीजी भाषान्तर सहित तैयार है।

मुद्रक-प्रकाशक—पंडित माधव शर्मा

यमुनावल्लभ मुद्रणालय, ३५।१३ जंगमवाड़ी, काशी।

आचार्य जी के प्रकाशित ग्रन्थः—

संख्या	ग्रन्थ	टीका आदि	मूल्य
१)	महानुभवशक्तिस्तोत्रम्	(संस्कृत-हिन्दी व्याख्या)	१—००
२)	श्रीपरशुरामस्तोत्रम्	(हिन्दी अनुवाद)	अमूल्य
३)	श्रीविंशतिकाशास्त्रम्	(संस्कृत-हिन्दी व्याख्याएं)	५—७५
४)	सप्तपदीहृदयम्	(संस्कृत व्याख्या, हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद)	१—५०
५)	सञ्जीवनीदर्शनम्	(संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी अनुवाद)	१—५०
६)	सङ्क्रान्तिपञ्चवशी	(हिन्दी गद्य-पद्य अनुवाद)	१—००
७)	परशिवप्रार्थना	(सिद्धमहामन्त्र) (हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद)	अमूल्य
८)	मन्दाक्रान्तास्तोत्रम्	(हिन्दी अनुवाद)	५—००
९)	श्रीआत्मविलासः	(सुन्दरी नामक हिन्दी व्याख्या आदि)	२०—००
१०)	श्रीसिद्धमहारहस्यम्	(हिन्दी, अनुवाद व्याख्या)	१०—००
११)	श्रीसिद्धमहारहस्यम्	(मूल मात्रम्)	१—५०
१२)	श्रीमदमृतसूक्तिपञ्चाशिका	(संस्कृत व्याख्या)	३—००
१३)	मन्दाक्रान्तास्तोत्रम्	(हिन्दी व्याख्या)	५—००
१४)	श्रीराष्ट्रालोकः	(हिन्दी अनुवाद)	१—५०

सभी पुस्तकें मिलने का पता—

श्री दुर्गादत्त शर्मा, ए—७२, अमृतपथ,

श्रीमद् अमृतवाग्भव शोध-संस्थान,
जनता कालोनी, जयपुर (राजस्थान)

श्रीपीठम्,

सैद्धदर्शनशोधसंस्थानम्, जम्मू।

मुद्रक—एस० एन० मगोत्रा प्रिंटिंग प्रैस, गली खिलोनेआं जम्मू-कश्मीर।